श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनप्रणीतं

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

विस्तृत भूमिका, संस्कृत श्लोक, अन्वय, हिन्दीटीका,
श्रीधरस्वामिकृत **'भावार्थदीपिका'** (श्रीधरी) संस्कृतटीका एवं
श्रीधरी की हिन्दी व्याख्या सहित

सम्पादक एवं हिन्दीटीकाकार

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
650
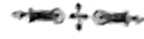
श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनप्रणीतं
श्रीधरस्वामिविरचितभावार्थदीपिकासंवलितं

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

विस्तृतभूमिकया, अन्वयेन, हिन्द्यनुवादेन, श्रीधर्या: संस्कृतव्याख्यया
भावप्रकाशिकानाम्न्या हिन्दीव्याख्यया,
अकारादिश्लोकानुक्रमण्या च समुद्भासितम्

प्रथम भाग

(प्रथम एवं द्वितीय स्कन्ध)

सम्पादको व्याख्याकारश्च
आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्यः)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्–आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542 2335263, 2335264

e-mail : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण : 2019

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए

अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11 23286537, (मो.) +91 9811104365

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

4842/24 अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069

वाराणसी 221001

*

मुद्रक :

ए.के. लिथोग्राफर, दिल्ली,

जीवन के कुछ प्रेरक-तत्त्व

याद आती है उन दिनों की जब मैं विरला संस्कृत कालेज लालघाट, वाराणसी का अध्यापन कार्य छोड़कर अयोध्या चला आया था और अयोध्या के श्रीत्रिदण्डिदेव संस्कृत विद्यालय में अध्यापन कार्य भी कर रहा था। एक दिन अयोध्या के श्रीमणिरामदासजी की छावनी पर मैं गया था। वहाँ पर एक दण्डी संन्यासी महात्मा से मेरी भेंट हुई बातों के प्रसङ्ग में व्यंग्य करते हए वे महात्माजी मुझसे कहे— अरे भाई ! तुम तो उस समाज के सदस्य हो जिस समाज के लोग पोङ्गल-प्रसाद पाकर अपनी तोंद पर हाथ रखकर शान्ति पूर्वक खर्राटे मारते हैं। यह बात मुझे बहुत ही कष्टकारक प्रतीत हुई; मैंने मन में यह निश्चय कर लिया कि मुझे अपने जीवन में विशिष्टाद्वैत दर्शन के क्षेत्र में अवश्य कुछ करना है।

उसके बाद मैं घर पर आकर श्रीभाष्य पर काम करने का निश्चय किया और करना भी प्रारम्भ कर दिया। उस कार्य में **प्रातर्वन्द्य जगद्गुरु श्रीस्वामी रामनारायणाचार्यजी** से मुझे सहायता भी प्राप्त होने लगी। किन्तु तादात्विक कुछ विघटक तत्त्वों ने ऐसा प्रयास किया कि वह कार्य विघटित हो ही गया।

मैं अपने उद्देश्य से निराश हो गया था, त्रिदण्डिदेव संस्कृत महाविद्यालय का अध्यापन भी छूट चुका था। किन्तु भगवत् कृपा से मैं **श्रीहनुमत् संस्कृत महाविद्यालय** में **वेदान्त विभागाध्यक्ष** पद पर नियुक्त होकर अध्यापन करने लगा था। कुछ महात्माओं के कहने से मैं अयोध्या के **फकीरे राम मन्दिर,** अयोध्या में श्रीभगवान् के समक्ष सायंकाल भागवत की कथा सुनाने लगा। एक दिन दो महात्मा मुझसे मिले और कहे कि आपके लिए **देवराहा बाबा** ने कुछ सामान भेजा है। और वे लोग मुझे सात हजार (७,०००) रुपये और कुछ वस्त्र दिए और कहे कि **देवराहा बाबा** ने कहा है कि आप **तत्त्वमुक्ताकलाप** की व्याख्या लिखें। मैंने कहा महाराज जी ! मैंने **देवराहा बाबा** का नाम तो सुना है; किन्तु उनका दर्शन नहीं किया है। महात्मा कहे कि आप **मैल चौराहा** जाकर उनका दर्शन कर लें। उसी समय मैंने अपने एक छात्र **कन्हैया दास** को लिया और प्रात:काल मैल चौराहा चला गया। सरयू में स्नान करके श्री बाबा का दर्शन किया।

बाबा देखते ही मुझे पहचान गये। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और तत्त्वमुक्ताकलाप की व्याख्या की बात भी कहे। मैंने कहा कि महाराज जी तत्त्वमुक्ताकलाप अत्यन्त कठिन ग्रन्थ है अतएव काम करने में डर लगता है। बाबा तो मंच पर बैठे थे, उन्होंने कहा नीचे पृथिवी पर मेरे सामने बैठो बच्चा और मेरी आँख में आँख मिलाकर देखो। आधा मिनट के बाद उन्होंने कहा काम हो गया; अब डर नहीं लगेगा।

अयोध्या आकर मैंने काम प्रारम्भ कर दिया और तत्त्वमुक्ताकलाप के नायकसर और बुद्धिसर की व्याख्या भी सम्पूर्ण हो गयी। इसके बाद बाबा के आदेशानुसार मैंने सम्पूर्ण **शतदूषणी, न्यायपरिशुद्धि, विष्णुसहस्रनाम, यतीन्द्रमतदीपिका सम्पूर्ण श्रीभाष्य** आदि पर काम किया। इसके पश्चात् बाबा का शरीर शान्त हो गया।

इसी बीच **चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के** स्वामी **श्रीयुत स्वर्गीय नवनीत दासजी गुप्त** से मेरी मुलाकात हुई। उनके ही कहने से मैंने **अग्निपुराण, देवीभागवत, विष्णुपुराण** तथा **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** पर भी काम कर

चुका था । एक दिन **नवनीत दासजी** ने मुझे **पद्मपुराण** पर काम करने को कहा । पहले तो यह काम अत्यन्त कठिन प्रतीत हुआ; किन्तु श्रीभगवान् की कृपा से वह भी काम पूरा हो गया । पद्मपुराण का काम तो पूरा हो गया किन्तु यह काम **नवनीतदासजी** के जीवन काल में नहीं पूरा हुआ अन्यथा उनको अत्यधिक प्रसन्नता हुई होती ।

चौखम्बा पब्लिकेशन हाउस दिल्ली के स्वामी **नीरज गुप्त** और **चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी** के स्वामी **नवीन गुप्त** के प्रोत्साहन से ही मैंने श्रीमद्भागवत और उसकी श्रीधरी (भावार्थदीपिका) पर काम किया है । श्रीभगवान् की असीम अनुकम्पा से यह भी काम मैंने पूरा कर लिया ।

मेरे इन कार्यों में मेरे सबसे छोटे आत्मज **संजय द्विवेदी जी** का भी पूरा सहयोग प्राप्त होता रहता है । मैं जो कुछ भी लिखता हूँ उसको कम्पोज करने का काम **संजयजी** ही कर देते हैं इसके लिए मुझे कोई अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता है । इनकी इस सहायता के लिए मैं इनके आयुरारोग्यैश्वर्य की कामना श्रीभगवान् से करता रहता हूँ ।

भागवतों का विधेय

शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)

१०/१/२०, कटरा, निकट कटरा पुलिस चौकी

श्रीअयोध्याजी, उ० प्र० ।

२२४ १२३

आमुखम्

भारत, भारतीयता और भारतीय संस्कृति के सर्वस्व वेद हैं। ज्ञानराशि का दूसरा नाम वेद है। वेद अनन्त हैं— **'अनन्ता वै वेदाः।'** इस आनन्त्य के साथ ही वेदार्थ का निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। महर्षि व्यास महाभारत में कहते हैं—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति॥

अर्थात् वेदों की विस्तृत व्याख्या इतिहासों और पुराणों के आलोक में करना चाहिए। जिस व्यक्ति ने इतिहासों और पुराणों का श्रवण नहीं किया है, ऐसा व्यक्ति अल्पश्रुत है। यदि कोई अल्पश्रुत व्यक्ति वेदार्थ की व्याख्या में प्रवृत्त होता है तो ऐसे व्यक्ति से वेद भी डरता है कि यह कहीं मेरा अपार्थ न कर दे। क्योंकि इतिहासों और पुराणों के माध्यम से वेदों की ही विस्तृत व्याख्या की गयी है। इससे स्पष्ट है कि इतिहास और पुराण वेदों की व्याख्या स्वरूप है। सामान्य व्यक्ति भी वेदार्थों को जान सके एतदर्थ ही ऋषियों ने इतिहासों और पुराणों की रचना की। इस कार्य में यदि विचार किया जाय तो वेदार्थ की सार्वजनीन भाषा में व्याख्या करने का सर्व प्रथम कार्य महर्षि वाल्मीकि ने किया। महर्षि वर्ल्मीकि से पहले भारत वर्ष की प्रख्यात तथा समादृत भाषा वेदों की भाषा थी। किन्तु वेदों की भाषा को लेकर जन-सामान्य के सामने अनेक समस्याएँ थीं। सब लोग उस भाषा को बोलने के अधिकारी नहीं माने जाते थे। वेद स्पष्ट रूप से कहता है— **'स्त्रीशूद्रौ नाऽधीयाताम्।'**

अर्थात् वेदों का अध्ययन स्त्री तथा शूद्र नहीं करें। इससे स्पष्ट है कि पूरी आबादी के आधा से अधिक भाग वेदार्थ के ज्ञान से वञ्चित रह जाता था। वह आत्म कल्याण करने में अक्षम रह जाता था। वेद प्रतिपाद्य तत्त्व क्या है ? इस बात को नहीं जान पाता था। कुछ ही लोग आत्मकल्याण के साधनों को जान पाते थे। उन लोगों को इस बात का ज्ञान ही नहीं हो पाता था कि—

१. हमारा अपना स्वरूप क्या है ?।
२. मानव जीवन के चरम (अन्तिम) प्राप्य तत्त्व का स्वरूप क्या है ?
३. मानव जीवन के प्राप्य तत्त्व की प्राप्ति के साधन कौन हैं ? तथा उन साधनों में सर्वोत्कृष्ट साधन कौन है ?
४. उस प्राप्य तत्त्व की प्राप्ति का फल क्या है ?
५. तथा प्राप्य तत्त्व की प्राप्ति का विरोधी तत्त्व क्या है ?।

इन सभी समस्याओं को दृष्टि-पथ में रखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता हो गयी थी कि भारत वर्ष की कोई ऐसी भाषा होनी चाहिए जो जन-सामान्य की भाषा हो। **चत्वारो वर्णाः ब्राह्मणक्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः** इस सूक्ति के अनुसार भारत वर्ष की सारी प्रजा चार वर्णों में विभक्त थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन चारो वर्णों के पुरुष तथा स्त्री समान रूप से उस भाषा का स्वतन्त्रता पूर्वक उच्चारण कर सकें। अध्ययनाध्यापन करके आत्मोन्नयन कर सकें इस बात की नितान्त आवश्यकता थी। इस कमी का अनुभव सब लोग करते थे। व्याकरण शास्त्र के नव प्रख्यात विद्वान्—

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् । सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम् ॥

भी इस दिशा में प्रयासरत थे; किन्तु कोई समीचीन और सुलभ मार्ग नहीं मिल पा रहा था । अन्त में महर्षि वाल्मीकि ने इस कार्य का बीड़ा उठाया । वे देवर्षि नारदजी के शिष्य थे और ब्रह्माजी की साक्षात् कृपा प्राप्त किए थे। उन्होंने महाकाव्य प्रणयन के माध्यम से इस कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न किया । वेद प्रतिपाद्य अर्थ का कान्तासम्मितोपदेश रूप रामायण काव्य का उन्होंने प्रणयन करके स्पष्ट कर दिया कि इस आदि-काव्य रामायण में प्रयुक्त भाषा को अपनाने से सबों के आत्म कल्याण का मार्ग खुल जा सकता है । रामायण के रूप में जो लोक (सार्वजनीन) भाषा के रूप में है वह साक्षात् वेदावतार है । इस काव्य में वेदार्थ का पूर्ण रूप से विवेचन है ।

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥

सबसे बड़ी बात तो यह थी कि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में लोकनायक श्रीरामचन्द्रजी के चरित को गौण रूप से तथा इस काव्य की नायिका सीताजी के चरित को प्रधान रूप से प्रतिपादित किया । महर्षि वाल्मीकि स्वयं कहते हैं—

'काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ।'

अर्थात् यह सम्पूर्ण रामायण काव्य है और इस काव्य में सीताजी का ही महान् चरित वर्णित है । इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि समाज में केवल पुरुषों का ही महत्त्व हो यह कोई आवश्यक नहीं है । महत्त्व के विषय स्त्री पुरुष दोनों हो सकते हैं । इस काव्य का नाम भले ही रामायण है, किन्तु इस काव्य में सीताजी के ही चरित की विशेषता है । दक्षिण भारत के प्रख्यात विद्वान् श्रीपराशर भट्ट भी कहते हैं—

'श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे ।'

अर्थात् हे मातः सीते ! आपके ही चरित के बल पर श्रीरामायण भी जीवित है । महर्षि वाल्मीकि के इस प्रयास के पश्चात् तो सभी वैयाकरणों को राजघण्टापथ ही मिल गया । वे सबके सब इस लौकिक भाषा को अपने-अपने व्याकरणों के माध्यम से सजाने और संवारने में लग गये । बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने-अपने शब्द कोशों से इस लोक-सरस्वती के अक्षय भण्डार से भर दिया । इस प्रयास में सैकड़ों शब्द-कोश तथा धातु-कोश लिखे गये । यह भारतीय भारती का विशाल शब्द कोश संसार के समस्त भाषाओं से बड़ा हो गया ।

महर्षि वाल्मीकि के पश्चात् महर्षि व्यास आये और उन्होंने इतिहास श्रेष्ठ श्रीरामायण की अद्भुतता का अनुभव करते हुए सवा लाख परिमित श्लोक वाले महाभारत ग्रन्थ का प्रणयन किया । महाभारत इतिहासों की कोटि में दूसरा स्थान रखता है । जिस तरह रामायण में सीताजी के चरित की महत्ता है उसी तरह महाभारत में परमात्म चरित की महत्ता वर्णित है । क्योंकि महर्षि व्यास यह अनुभव करते थे कि श्रीरामायण में पुरुषकार तत्त्व का वैभव तो प्रतिपादित कर दिया गया है; किन्तु उपाय तत्त्व के वैभव को प्रतिपादन की गौणता ही उसमें वर्णित है । इसलिए उन्होंने उपाय तत्त्व (परमात्म तत्त्व) का वैभव मुख्य रूप से प्रतिपादित किया । और उन्होंने महाभारत में ही उपर्युक्त पाञ्चो प्रश्नों का स्पष्टीकरण भी किया । उन्होंने कहा—

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः । प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्रप्तिविरोधि च ॥
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः । मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्त पारगाः ॥

अर्थात् सभी इतिहासों और पुराणों के साथ सभी वेद तथा वेदों और वेदान्तों के अभिज्ञ मुनिगण और महात्मागण इन पाँच विषयों का ही मुख्य रूप से प्रतिपादन करते हैं—

१. मानव जीवन के परम प्राप्य परंब्रह्म का स्वरूप क्या है ?।

२. प्राप्त करने वाले जीवात्मा (प्रत्यगात्मा) का स्वरूप क्या है ?।

३. परमात्मा की प्राप्ति के साधन कौन हैं ? तथा उन साधनों में श्रेष्ठ साधन क्या है ?।

४. परमात्मा की प्राप्ति का फल क्या है ?

५. परमात्मा की प्राप्ति में विरोधी तत्त्व कौन हैं ?।

इतिहास काल के पश्चात् पुराणों का काल आता है । महर्षि व्यास को ही पुराणकार मुख्य रूप से माना जाता है । उन्होंने अठारह पुराणों की रचना की । उन पुराणों के नाम इस प्रकार है—

१. ब्रह्म पुराण इस पुराण के श्लोकों की संख्या दस हजार (१००००) है ।

२. पद्मपुराण इस पुराण के श्लोकों की संख्या पचपन हजार (५५,०००) है ।

३. श्रीविष्णु पुराण इस पुराण के श्लोकों की संख्या तेइस हजार (२३,०००) है । यहाँ ध्यान देने की बात है कि वर्तमान में गीता प्रेस आदि मुद्रणालयों से जो विष्णुपुराण प्रकाशित है उसमें तो केवल छह हजार श्लोक हैं । अब प्रश्न होता है कि उन छह हजार श्लोकों के अतिरिक्त श्रीविष्णु पुराण के १७,००० (सत्रह हजार श्लोक) कहाँ गये ? यही नहीं इस छह हजार श्लोक वाले ही श्रीविष्णु पुराण पर श्रीधर स्वामी की तथा विष्णुचित्त की टीकाएँ उपलब्ध होती हैं । ऐसा क्यों ? तो इसका उत्तर है कि इस छह हजार वाले विष्णु पुराण में ही वेदान्त प्रतिपादित तत्त्वों की तथा अर्थ पञ्चक जो ऊपर पाँच प्रश्नों के रूप में निर्दिष्ट हैं की; व्याख्या की गयी है । इसीलिए इन दोनों आचार्यो ने विष्णु पुराण के इसी अंश पर व्याख्या लिखी ।

विष्णु पुराण का द्वितीय भाग विष्णुधर्मोत्तर है । उसमें सत्रह हजार श्लोक भी हैं । विष्णु धर्मोत्तर के अन्तिम तीसरे खण्ड की अन्तिम पुष्पिका से भी स्पष्ट है कि विष्णु धर्मोत्तर विष्णु पुराण का उत्तरार्द्ध है ।

४. शिव पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या चौबीस हजार (२४,०००) है ।

५. श्रीमद्भागवत पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या अठारह हजार (१८,०००) है ।

६. नारद पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या पचीस हजार (२५,०००) है ।

७. मार्कण्डेय पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या नव हजार (९०००) हैं ।

८. अग्नि पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या पन्द्रह हजार (१५,०००) है ।

९. भविष्य पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या चौदह हजार (१४,०००) है ।

१० ब्रह्मवैवर्त पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या अठारह हजार (१८,०००) है ।

११. लिङ्ग पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या ग्यारह हजार (११,०००) है ।

१२. वराह पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या चौबीस हजार (२४,०००) है ।

१३. स्कन्द पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या इक्यासी हजार (८१,०००) है ।

१४. वामन पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या दस हजार (१०,०००) है ।

१५. कूर्म पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या सत्रह हजार (१७,०००) है ।

१६. मत्स्य पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या चौदह हजार (१४,०००) है ।

१७. गरुड़ पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या उन्नीस हजार (१९,०००) है ।

१८. ब्रह्माण्ड पुराण इस पुराण की श्लोक संख्या बारह हजार (१२,०००) है ।

इस तरह सभी पुराणों की सम्पूर्ण श्लोक संख्या चार लाख है। महर्षि श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में इन पुराणों तथा इन पुराणों के श्लोकों की संख्या का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

ब्राह्मं दश सहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च । श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशतिशैवकम् ॥
दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः । मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्चचतुश्शतम् ॥
चतुर्दशभविष्यं स्यात् तथा पञ्चशतानि च । दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु ॥
चतुर्विंशतिवाराहमेकाशीति सहस्रकम् । स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दशकीर्तितम् ॥
कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तुचतुर्दश । एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥
एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ॥

(भा० पु० १२/१३/४-९)

इन सभी पुराणों में श्रीमद् भागवत महापुराण की महिमा अत्यधिक बतलायी गयी है। सूतजी ने शौनकादि महर्षियों को बतलाया कि सर्वप्रथम भगवान् विष्णु ने अपने नाभि कमल पर स्थित तथा संसार के भय से भयभीत ब्रह्माजी पर कृपा करके इस पुराण को प्रकाशित किया।

इदं भागवतं पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे । स्थिताय भवभीताय कारुण्यात् सम्प्रकाशितम् ॥
(भा० म० पु० १२/१३/१०)

उन्होंने बतलाया कि इस पुराण के आदि, मध्य और अन्त में वैराग्य को उत्पन्न करने वाली अनेक कथाएँ हैं। इस महापुराण में जो श्रीहरि की कथाएँ हैं वे सभी अमृत स्वरूप हैं। उन सबों का सेवन करने से सत्पुरुषों एवं देवताओं को बड़ा ही आनन्द मिलता है।

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यान संयुतम् । हरिलीलाकथा व्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥
(भा० म० पु० १२/१३/११)

यह सर्वविदित है कि सभी उपनिषदों का सार है ब्रह्म और आत्मा का एकत्व रूप अद्वितीय सद् वस्तु। वही श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य है। इसके निर्माण का प्रयोजन है एक मात्र कैवल्य मोक्ष। श्रीमद्भागवतकार के ही शब्दों में—

सर्ववेदान्तसारं यत् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् । वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैक प्रयोजनम् ॥
(भा० म० पु० १२/१३/१२)

श्रीमद्भागवत का श्रैष्ठ्य

सूतजी ने श्रीमद्भागवत पुराण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे । यावन्नदृश्यते साक्षाच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥
(भा० म० पु० १/१३/१४)

अर्थात् सन्तों के समूह में तब तक ही दूसरे पुराण सुशोभित होते हैं जब तक कि साक्षात् श्रीमद्भागवत का दर्शन नहीं हो जाता है। श्रीमद्भागवत का दर्शन हो जाने पर तो सन्त पुरुष जान ही लेते हैं कि श्रीमद्भागवत स्वेतर समस्त पुराणों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। यह ऐसा पुराण है कि इसका मनन चिन्तन करके मनुष्य मानव जीवन के चरमोद्देश्य मुक्ति नामक पुरुषार्थ को प्राप्त कर लेता है। वह सदा-सदा के लिए इस भवाटवी से मुक्त हो जाता है। किं बहुना यह श्रीमद् भागवत पुराण समस्त शास्त्रों का सार है। मुक्ति के साधनों का स्पष्ट रूप से भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य का जितना विशद

वर्णन श्रीमद्‌भागवत महापुराण में है, उतना विशद वर्णन किसी भी दूसरे पुराण में नहीं है । अतएव इस पुराण की श्रेष्ठता प्रख्यात है । सूत जी के शब्दों में—

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते । तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥
(भा० म० पु० १२/१३/१५)

वेदार्थों का निर्णय करने वाला शास्त्र ही वेदान्त शब्द से कहा जाता है । यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ उन समस्त वेदान्तों का सार सर्वस्व है । जो साधक श्रीमद् भागवत के रस को पीकर तृप्त हो जाता है, उसका अन्य किसी भी शास्त्र में प्रेम नहीं होता है । श्रीमद्भागवत की उपमा देते हुए सूतजी ने कहा—

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा । वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥
(भा० म० पु० १२/१३/१६)

अर्थात् जिस तरह सभी नदियों में पतितपावनी गङ्गा नदी श्रेष्ठ है, तथा सभी देवों में सदा अपने स्वरूप में ही स्थित रहने वाले भगवान् अच्युत श्रेष्ठ हैं भगवद् भक्तों में जैसे निरन्तर परमात्म चिन्तन करते रहने वाले शङ्करजी श्रेष्ठ हैं, उसी तरह सभी पुराणों में यह श्रीमद् भागवत पुराण ही श्रेष्ठ है । यही नहीं—

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा । तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥

अर्थात् हे शौनकादि महर्षियों जिस तरह सभी क्षेत्रों में काशी क्षेत्र सर्वश्रेष्ठ है । क्योंकि काशी में मरने वाले जीवों की मुक्ति हो जाती है यह शास्त्र सम्मत तथ्य है । अतएव काशी क्षेत्र सर्वोत्तम है । इससे बढ़कर कोई दूसरा क्षेत्र नहीं है । उसी तरह पुराण समूह में श्रीमद्भागवत पुराण सर्वोत्तम है । श्रीमद्भागवत की महिमा का वर्णन करते हुए सूतजी ने शौनकादि महर्षियों को बतलाया कि—

श्रीमद्भावतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं; यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
तत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्; तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥
(श्रीमद्भागवत १२/१३/१८)

अर्थात् यह श्रीमद्भागवत पुराण निर्दोष है, यह भगवद् भक्तों को अत्यन्त प्रिय पुराण है । इस पुराण में जीवनमुक्त परमहंसों के सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय एवं माया के लेश से रहित ज्ञान का गान किया गया है । इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसका नैष्कर्म्य अर्थात् कर्मों की आत्यन्तिक निवृत्ति ज्ञान वैराग्य और भक्ति से युक्त है । जो पुरुष इसका श्रवण, पठन एवं मनन करने लगता है उसे भगवान् की भक्ति प्राप्त हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है ।

यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ भगवत् तत्त्व विषयक ज्ञान का प्रकाशक है । इसके समान कोई भी पुराण नहीं है । पहले पहल श्रीभगवान् ने इसको ब्रह्माजी के लिए प्रकाशित किया था । उसके पश्चात् वे ब्रह्माजी के रूप से इसका उपदेश देवर्षि नारदजी को दिये । तदनन्तर नारदजी के रूप से भगवान् कृष्णद्वैपायन को इसका उपदेश उन्होंने दिया । उसके पश्चात् उन्होंने व्यास रूप से योगीन्द्र श्रीशुकदेवजी को इसका उपदेश दिया । फिर शुकदेवजी के रूप से करुणावशात् राजर्षि परीक्षित् को उन्होंने इसका उपदेश दिया ।

वे श्रीभगवान् परम शुद्ध और माया मल से रहित हैं । शोक और मृत्यु उनके पास भी नहीं जा सकते हैं । हम सभी उन्हीं परम सत्य-स्वरूप परमेश्वर का ध्यान करते हैं । सूतजी के ही शब्दों में—

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा, तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतः, तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥
(श्रीभगागवत १२/१३/१९)

इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थ को श्रीभगवान् का स्वरूप माना गया है । श्रीवैष्णवगण इसकी पूजा भगवद भावना से भरकर प्रेम पूर्वक किया करते हैं । श्रीमन्महाभारत तथा अन्य पुराणों का प्रणयन करने के पश्चात् भी महर्षि व्यास का मन अशान्त था उन्हें शान्ति नही मिल रही थी । उनको शान्ति तो तब मिली जब देवर्षि नारदजी ने उनसे कहा—

अथो महाभाग भवान् अमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥

(श्रीमद्भागवत १/५/१३)

अर्थात् महाभाग व्यासजी ! आपकी दृष्टि अमोघ है । आप पवित्रकीर्ति है । आप सत्य परायण और दृढ़व्रत हैं। अतएव आप अब सभी जीवों को संसार के बन्धन से मुक्त करने के लिए समाधि के द्वारा अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण करें ।

ऐसा करने पर ही आपको परम शान्ति की प्राप्ति होगी । इसके पश्चात् इस श्रीमद् भागवत ग्रन्थ का प्रणयन करके व्यासजी ने परम शान्ति को प्राप्त किया । इस श्रीमद्भागवत महापरुाण में, सकाम कर्मयोग, निष्काम कर्मयोग, साधन ज्ञान, सिद्धज्ञान, साधन भक्ति, साध्य भक्ति, वैधी भक्ति, प्रेमाभक्ति, मर्यादामार्ग, अनुग्रहमार्ग द्वैत, अद्वैत तथा द्वैताद्वैत का विस्तृत विवेचन है । यह पुराण प्रेम की मधुरता से पद-पद पर स्वादिष्ट प्रतीत होता है । इसमें कहीं भी वैरस्य की प्रतीति नहीं होती है ।

यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है । इसका नियमतः पाठ करने से लौकिक एवं पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । इस पुराण में अनेक प्रकार के अमोघ प्रयोग हैं । उदाहरणार्थ नारायण-कवच, गजेन्द्र स्तुति, पुंसवन-व्रत, पयोव्रत, सप्ताह-श्रवण आदि । जो कोई भी व्यक्ति अपने वैदुष्याभिमान का परित्याग करके इस श्रीमद्भागवत पुराण का पाठ अर्थानुसन्धान पूर्वक करता है, वह श्रीभगवान् की कृपा को अवश्य प्राप्त करता है ।

सर्वप्रथम श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को चतुश्लोकी भागवत का उपदेश किया था । उसका स्वरूप इस प्रकार है ।

चतुःश्लोकी की भागवत

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् । पश्चादहं यदेतच्च योवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥१॥
ऋतेर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥२॥
यथा महान्ति भूतान्ति भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः। अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥४॥

अर्थात् सृष्टि से पूर्व केवल मैं ही था । मुझसे भिन्न न स्थूल था, न सूक्ष्म था और न तो दोनों का कारण अज्ञान था । जहाँ यह सृष्टि नहीं है वहाँ भी केवल मैं ही हूँ तथा यह सृष्टि के रूप में जो प्रतीत हो रहा है वह भी मैं ही हूँ एवं जो कुछ बचा रहेगा वह भी मैं ही हूँ ॥१॥

वस्तुतः नहीं होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो चन्द्रों के समान मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश मण्डल के नक्षत्रों में राहु की तरह जो मेरी प्रतीति नहीं होती है इसे मेरी माया जाननी चाहिए ॥२॥

जिस तरह पञ्चभूतों से निर्मित छोटे बड़े शरीरों में आकाश आदि पञ्चमहाभूत उन शरीरों के कार्य रूप से निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपों में कारण रूप से विद्यमान रहने के कारण प्रवेश नहीं भी करते हैं, वैसे ही उन प्राणियों के शरीर की दृष्टि से मैं उनमें आत्मा रूप में प्रवेश किए हुए हूँ और आत्मा की दृष्टि से अपने से अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ ॥३॥

यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है, इस प्रकार से निषेध की पद्धति से और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है इस तरह से अन्वय की पद्धति से यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत और सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं वे ही वास्तविक तत्त्व हैं । जो लोग आत्मा और परमात्मा का तत्त्व जानना चाहते हैं उन्हें केवल इतना ही जानने की आवश्यकता है ।।४।।

श्रीमद्भागवत पुराण की महिमा कई पुराणों में अनेक प्रकार से वर्णित है । स्कन्दपुराण के विष्णु खण्ड के मार्गशीर्ष माहात्म्य के सोलहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने स्वयं अपने श्रीमुख से ब्रह्माजी को भागवत पुराण के माहात्म्य को निम्नांकित प्रकार से बतलाया है ।

स्कन्द पुराणीय श्रीमद्भागवत माहात्म्य

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम् । शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम संतोषकारणम् ।।१।।

अर्थात् श्रीमद् भागवत नामक महापुराण लोक में प्रख्यात है । उपासक को मुझे सन्तुष्ट करने के लिए उसका श्रद्धा पूर्वक श्रवण करना चाहिए यह पुराण मेरे सन्तोष का साधन है ।।१।।

नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः । प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ।।२।।

अर्थात् जो भक्त प्रत्येक दिन श्रीमद्भागवत महापुराण का पाठ करता है, उसको इस भागवत पुराण में जितने अक्षर हैं उतनी कपिला गौ का दान करने का फल प्राप्त होता है ।

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् । पठते शृणुयाद् यस्तु गोसहस्त्र फलं लभेत् ।।३।।

अर्थात् जो पुरुष प्रतिदिन श्रीमद्भागवत महापुराण के आधा श्लोक अथवा एक चौथाई श्लोक का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है उसको एक हजार गौओं का दान करने का फल प्राप्त होता है ।।३।।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत । अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः ।।४।।

अर्थात् हे पुत्र ! जो मनुष्य पवित्रमना होकर प्रतिदिन श्रीमद्भागवत के एक श्लोक का पाठ करता है, उस मनुष्य को अठारहो पुराणों का पाठ करने का फल प्राप्त होता है ।।४।।

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः । कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चन्ति सदा मम ।।५।।

जिस स्थान पर मेरी कथा प्रतिदिन होती है वहाँ पर भगवान् विष्णु के पार्षद प्रह्लादादि रहा करते हैं । जो लोग मेरे भागवत पुराण की पूजा किया करते हैं वे मनुष्य कलियुग के अधिकार से बाहर रहा करते हैं । उन पर कलियुग का वश नहीं चलता है ।।५।।

वैष्णवानां तु शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे नराः । सर्वपाप विनिर्मुक्ता भवन्ति सुरबन्दिताः ।।६।।

जो मनुष्य अपने गृह में वैष्णव शास्त्रों की पूजा करते हैं वे सभी पापों से छूटकारा प्राप्त कर लेते हैं और देवताओं द्वारा वन्दित होते हैं ।।६।।

येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ । आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीतोभवाम्यहम् ।।७।।

जो लोग कलियुग में अपने घर में नित्य ही श्रीमद्भागवत पुराण की पूजा करते है तथा कलि से निडर होकर ताल ठोकते हैं उछलते-कूदते हैं उन लोगों से मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ ।।७।।

यावद् दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे । तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ।।८।।

हे पुत्र ! मनुष्य जितने दिन तक अपने गृह में श्रीमद् भागवत शास्त्र को रखता है उतने समय तक उसके पितृगण दूध, घी, मधु तथा मीठा जल पीते हैं ।।८।।

यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये । कल्पकोटि सहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥९॥

जो लोग श्रीवैष्णवों को भक्ति पूर्वक भागवत शास्त्र प्रदान करते है वे लोग करोड़ों कल्पों तक मेरे लोक में निवास करते हैं ॥९॥

येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः । प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाभूत संप्लवम् ॥१०॥

जो लोग अपने घर में भागवत शास्त्र का सदैव पूजन करते हैं वे मानो एक कल्प तक के लिए सभी देवताओं को तृप्त कर देते हैं ॥१०॥

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे । शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ॥११॥

अपने घर में भागवत का आधा श्लोक अथवा चौथाई श्लोक रहे तो वह अच्छा है । उसे छोड़कर सैकड़ों या हजारों तरह के शास्त्रों का संग्रह करने से कौन सा लाभ है ?॥११॥

न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ । न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्य पाशात् कदाचन ॥१२॥

जिस मनुष्य के घर में श्रीमद् भागवत शास्त्र नहीं विद्यमान रहता है उसको कभी भी यमराज के पाश से छुटकारा नहीं मिलता है ॥१२॥

कथं सवैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ । गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचादधिको हि सः ॥१३॥

इस कलियुग में जिसके घर में भागवत शास्त्र मौजूद नहीं है उसको वैष्णव कैसे जाना जा सकता है, वह तो चाण्डाल से भी अधिक निकृष्ट है ॥१३॥

सर्वस्वेनापि लोकेश कर्तव्यः शास्त्र संग्रहः । वैष्णवस्तु सदा भक्त्या तुष्ट्यर्थं मम पुत्रक ॥१४॥

हे लोकेश ब्रह्मा मुझको भक्ति पूर्वक संतुष्ट करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपना सर्वस्व देकर भी वैष्णवशास्त्रों का अपने घर में संग्रह करे ॥१४॥

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ । तत्र तत्र सदैवाहं भवामि त्रिदशैः सह ॥१५॥

कलियुग में जहाँ-जहाँ पवित्र भागवत शास्त्र रहता है, वहाँ-वहाँ सदैव देवताओं के साथ मैं निवास करता हूँ ॥१५॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च । यज्ञाः सप्त पुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चया ॥१६॥

उस स्थान पर सभी नदियाँ, नद और सरोवर के रूप में सभी तीर्थ निवास करते हैं, सभी प्रकार के यज्ञ सभी सातो पुरियाँ तथा सभी पवित्र पर्वत निवास करते हैं, जहाँ पर श्रीमद्भागवत शास्त्र रहता है ॥१६॥

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना । पाप-क्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्म-बुद्धिना ॥१७॥

यश, धर्म तथा विजय प्राप्ति को चाहने वाले धर्मबुद्धि मनुष्य को चाहिये कि वह पापों का विनाश करने के लिए तथा मोक्ष प्राप्त करने के लिए मेरे भागवत शास्त्र का श्रवण करे ॥१७॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्य पुण्यदम् । पठनाच्छ्रवणाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१८॥

यह श्रीमद् भागवत पुराण आयुरारोग्य और पुण्य को देने वाला है । इसका पाठ करने तथा श्रवण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१८॥

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् । सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥१९॥

हे लोकेश ब्रह्माजी ! जो लोग इस परम उत्तम भागवत पुराण को न तो सुनते हैं और न तो सुनकर प्रसन्न ही होते हैं, उन लोगों के स्वामी सदा यमराज ही बने रहते हैं, यह मैं सत्य सत्य कहता हूँ ॥१९॥

न गच्छति यदामर्त्यः श्रोतुं भगवतं सुत । एकादश्यां विशेषेण नास्ति पापरतस्ततः ॥२०॥

हे पुत्र जो मनुष्य कभी भी विशेष रूप से एकादशी तिथि को भागवत सुनने नहीं जाता है, उससे बड़ा पापी कोई मनुष्य नहीं है ॥२०॥

श्लोकं भागवतं चापि श्लोकार्धं पादमेव वा । लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ॥२१॥

जिसके घर में भागवत का एक श्लोक, आधा श्लोक अथवा श्लोक का एक ही चरण लिखकर रखा रहता है मैं उसके घर में निवास करता हूँ ॥२१॥

सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् । न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥२२॥

मनुष्यों के लिए सभी आश्रमों की यात्रा तथा सभी तीर्थों में जाकर स्नान करना उतना पवित्र कारक नहीं है जितना श्रीमद्भागवत पुराण पवित्र कारक है ॥२२॥

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् । गच्छामि तत्र तत्राहं गौर्यथा सुतवत्सला ॥२३॥

हे चतुर्मुख ब्रह्मा जहाँ-जहाँ पर श्रीमद्भागवत की कथा होती है वहाँ-वहाँ पर मैं वैसे ही जाता हूँ जिस प्रकार पुत्र वत्सला गौ अपने बछड़े के पीछे-पीछे जाती है ॥२३॥

मत्कथा वाचकं नित्यं मत्कथा श्रवणे रतम् । मत्कथा प्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ॥२४॥

जो मनुष्य मेरी कथा कहता है, तथा जो मनुष्य सदैव मेरी कथा सुनता रहता है एवं जो मनुष्य मेरी कथा सुनकर मन ही मन प्रसन्न होता रहता है, उस मनुष्य का मैं कभी भी परित्याग नहीं करता हूँ ॥२४॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः । सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं प्याति पुत्रक ॥२५॥

हे पुत्र ! परम पुण्यमय श्रीमद्भागवत को देखकर जो उठकर खड़ा नहीं हो जाता है, उसका एक वर्ष का सारा पुण्य विनष्ट हो जाता है ॥२५॥

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थानाभिवादनैः । सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्ममातुला ॥२६॥

श्रीमद्भागवत को देखकर जो मनुष्य उठकर खड़ा हो जाता है और उसको प्रणाम करके सम्मान करता है उस मनुष्य को देखकर मुझे अतुलनीय प्रसन्नता होती है ॥२६॥

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत सम्मुखं हि यः । पदे-पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥२७॥

जो मनुष्य दूर से ही श्रीमद्भागवत को देखकर उसके सामने जाता है, उसको पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है इसमें विल्कुल सन्देह नहीं है ॥२७॥

उत्थाय प्रणमेद् यो वै श्रीमद्भागवतं नरः । धनपुत्रांस्तथादारान् भक्तिं च प्रददाम्यहम् ॥२८॥

जो मनुष्य खड़ा होकर श्रीमद्भागवत को प्रणाम करता है, उसको मैं धन, पुत्र, पत्नी तथा भक्ति प्रदान करता हूँ॥२८॥

महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं सुत । शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यो भवाम्यहम् ॥२९॥

हे पुत्र ! जो लोग महाराजोपचार से श्रीमद्भागवत की पूजा करके उसका श्रवण भक्ति पूर्वक करते हैं; मैं उन लोगों का वशवर्ती हो जाता हूँ ॥२९॥

ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्। शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥३०॥
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पै र्धूपदीपोपहारकैः। वशीकृत्यह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा ॥३१॥

अर्थात् हे सुन्दर व्रत वाले ब्रह्मा ! जो लोग मेरे पर्वों से सम्बन्ध रखने वाले सभी उत्सवों में मेरी प्रसन्नता के

लिए वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप और दीप आदि उपहार अर्पण करते हुए सर्वोत्तम श्रीमद्भागवत महापुराण का भक्ति पूर्वक श्रवण करते हैं, वे मुझको उसी प्रकार अपने वश में कर लेते हैं, जैसे कोई पतिव्रता स्त्री अपने सुन्दर स्वभाव वाले पति को अपने वश में कर लेती है ॥३०-३१॥

इस स्कन्द पुराण के ही समान पद्मपुराण में भी श्रीमद्भागवत महापुराण का माहात्म्य वर्णित है। उसका संग्रह तो श्रीमद्भावत माहात्म्य के रूप में श्रीमद्भागवत पुराण में बहुत प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। पद्म पुराणीय श्रीमद्भागवत माहात्म्य छह अध्यायों वाला है। और इस प्रकाशन में भी संगृहीत है। चूकि अन्य पुराणों में भी श्रीमद्भागवत की महिमा वर्णित है, इसी से इसकी श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है।

श्रीमद्भागवत महापुराण ही क्या अन्य सभी पुराणों, वेदों, इतिहासों तथा धर्म शास्त्रों का प्रधान रूप से वर्ण्य विषय अर्थ पञ्चक विज्ञान है, इसकी चर्चा मैं पीछे कर चुका हूँ। अब प्रश्न होता है कि सभी शास्त्र किस तरह से अर्थपञ्चक का निरूपण करते हैं। अतएव अर्थ पञ्चक के प्रमेयों का संक्षेप में निरूपण यहाँ अनावश्यक नहीं होगा।

अर्थपञ्चक के प्रमेय

अर्थपञ्चक का **पहला प्रमेय** है मानव जीवन के चरम प्राप्य परमात्मा का स्वरूप क्या है ? **प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपम्** प्राप्य परमात्मा के स्वरूप के विषय में श्रीमद्भागवत पुराण कहता है—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा, धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण १/१/१)

ब्रह्म सूत्र का पहला सूत्र है **'अथतो ब्रह्म जिज्ञासा।'** अर्थात् पूर्वमीमांसा के अध्ययन के पश्चात् यह जिज्ञासा होती है कि ब्रह्म किसे कहते हैं। इसके उत्तर में दूसरा सूत्र कहता है **जन्माद्यस्य यतः** अर्थात् इस सम्पूर्ण चेतनाचेतनात्मक जगत् की जिससे सृष्टि, स्थिति और संहार होता है, वही ब्रह्म है। उस ब्रह्म को शास्त्रों के ही माध्यम से जाना जा सकता है, इस बात को **'शास्त्रयोनित्वात्' (ब्र० सू० १/१/३)** सूत्र कहता है। उन परंब्रह्म के स्वरूप को निरूपित करते हुए भागवतकार कहते हैं **जन्माद्यस्य यतः इत्यादि।**

अर्थात् जिससे जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय होते हैं— क्योंकि वह समस्त सद्रूप पदार्थों में अनुगत हैं और असत् पदार्थों से पृथक है। वह जड़ नहीं चेतन है, परतंत्र नहीं स्वप्रकाश है। वह ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं अपितु अपने सत्य-सङ्कल्प से ही जिसने ब्रह्मा को वेदों का ज्ञान प्रदान कर दिया। उस ब्रह्म के विषय में बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं। जिस तरह तेजोमय सूर्य की रश्मियों में जल का, जल में स्थल का और स्थल में जल का भ्रम हो जाता है, उसी तरह उसमें यह त्रिगुणात्मिका जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्य के समान प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा माया और माया के कार्य से पूर्णतः मुक्त रहने वाले परम सत्य रूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।

शास्त्र बतलाते हैं कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से प्रतीत होने वाला यह प्रपञ्च चेतन ओर अचेतन पदार्थों से परिपूर्ण है। इस प्रपञ्च में अनन्त चेतन पदार्थ तथा प्रकृति के परिणाम भूत अनन्त अचेतन पदार्थ भरे रहते हैं। सबों के अन्तर्यामी श्रीभगवान् ही उपर्युक्त चेतन और अचेतन मय प्रपञ्च की सृष्टि स्थिति और लय करते हैं। इसीलिए वे जगत् कारण कहलाते हैं। वे केवल जगत् के कारण ही नहीं हैं अपितु इन बद्ध चेतनों को संसार के बन्धन से छुड़ाकर उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं। अतएव वे मोक्ष प्रदाता भी हैं। इस तरह से वे सभी वस्तुओं से विलक्षण हैं। जितने भी पदार्थ हैं उन सबों से विलक्षण ही हैं परंब्रह्म परमात्मा।

जगत् में जितने जड़ पदार्थ हैं, उनमें विकार आदि दोष रहते हैं। इस जगत् में जितने चेतन हैं उनमें दुःख आदि दोष रहते हैं एक मात्र श्रीभगवान् ही ऐसे पदार्थ हैं, जो सर्वदा सभी दोषों से रहित रहते हैं। तथा अपने आश्रितों के सभी दोषों को दूर करते हैं। इस दृष्टि से श्रीभगवान् स्वेतर सभी पदार्थों से विलक्षण सिद्ध होते हैं।

किञ्च परमात्मा अनन्त आनन्द के भण्डार हैं और अपने आश्रित जीवों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। इस दृष्टि से भी परमात्मा सर्वविलक्षण सिद्ध होते हैं। अनन्त ज्ञानानन्द ही परमात्मा का स्वरूप है। इसके साथ ही परमात्मा में ऐसे कल्याण गुण हैं जिनसे परमात्मा का उपास्य एवं प्राप्यत्व सिद्ध होता है। परमात्मा में विद्यमान सभी गुण जगत् का कल्याण करने वाले हैं। इसलिए परमात्मा कल्यागुण सागर कहे जाते हैं। परमात्मा के वे गुण असंख्य हैं और परमात्मा में वे अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए हैं। जितने भी उपनिषदादि शास्त्र हैं वे सबके सब परमात्मा का ही प्रतिपादन करते हैं। शास्त्र परंब्रह्म परमात्मा का अनेक शब्दों से प्रतिपादन करते हैं।

परमात्मा जिन शब्दों से प्रतिपादित किए जाते हैं उनमें कई शब्द सामान्य शब्द हैं और कई शब्द विशेष शब्द हैं। सर्वात्मा, परंब्रह्म, परज्योति, परतत्त्व, परमात्मा सत् आदि शब्द सामान्य शब्द हैं। ये शब्द प्रकरण आदि के माध्यम से परमात्मा को बतलाते हैं तथा परमात्मा के साथ-साथ अन्य अर्थों का प्रतिपादन करने की भी क्षमता रखते हैं। ये शब्द अनेकार्थक होते हैं। इसीलिए इन शब्दों को साधारण अथवा सामान्य शब्द से अभिहित किया जाता है।

भगवान् नारायण पुरुषोत्तम आदि शब्द विशेष शब्द हैं। ये शब्द एकमात्र परंब्रह्म परमात्मा के ही वाचक हैं। इसीलिए ये विशेष शब्द माने जाते हैं। शास्त्रों में परमात्मा को सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के शब्दों से प्रतिपादित किया गया है। **'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा।'** यह उपनिषद् वाक्य बतलाता है कि परमात्मा सबों के भीतर अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके सबों का प्रशासन करते हैं और वे सबों की आत्मा हैं इसीलिए वे सर्वात्मा हैं। परमात्मा सबों से बड़े और सबों को बढ़ाने वाले हैं। इसीलिए ब्रह्म या परंब्रह्म कहे जाते हैं। इसी अर्थ का प्रतिपादन **'बृहति बृंहयतीतिब्रह्म'** श्रुति करती है। वे अपार तेज से सम्पन्न हैं। उनके ही तेज से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है, अतएव वे परंज्योति कहलाते हैं। उपनिषद् वाक्य बतलाता भी है— **'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'** वे सबों के अन्दर रहने वाले अन्तरात्मा हैं। वे प्रलयकाल में भी सदा बने रहते हैं। उनका अभाव कभी नहीं होता है अतएव वे सत् शब्द से कहे जाते हैं। श्रुति भी कहती है— **'सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्।'**

पूर्वमीमांसा का एक सामान्य विशेष न्याय है। इस न्याय के अनुसार सामान्य शब्दों का विशेष शब्दों में पर्यवसान होता है। परमात्मा, सर्वात्मा, परज्योति आदि समान्य शब्दों का नारायण, पुरुषोत्तम, भगवान् आदि शब्दों में पर्यवसान हो जाता है। नारायण शब्द इसलिए विशेष शब्द है कि यह संज्ञा के ही अर्थ में व्युत्पन्न होता है। इसी तरह श्रीपति, पुरुषोत्तम, भगवान् आदि भी विशेष शब्द हैं। यह श्रीमद्भागवत विष्णुपुराण, श्रीमद्भगवद् गीता आदि के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है। सभी शास्त्रों की अभिमति है कि यह सारा संसार परमात्मा की शक्ति है। पुराण बतलाते हैं— **'परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तस्येदमखिलं जगत्।'** अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा की शक्ति है। इस जगत् को परमात्मा का अंश बतलाते हुए श्रीविष्णु पुराण बतलाता है— **विष्णोरंशा द्विजोत्तम** अर्थात् हे द्विजोत्तम मैत्रेय यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का अंश है। **विष्णोरेता विभूतयः** यह वाक्य बतलाता कि संसार की सारी वस्तुएँ भगवान् विष्णु की विभूतियाँ है, **'परस्य ब्रह्मणो रूपम्'** यह वाक्य कहता है कि सारा जगत् परंब्रह्म का रूप (शरीर) है। **'जगत् सर्वं शरीरं ते'** वाल्मीकीय रामायण का यह वाक्य सम्पूर्ण जगत् को परमात्मा का शरीर बतलाता है। **'तत्सर्वं वै हरेस्तनुः'** विष्णु पुराण का यह वाक्य सम्पूर्ण जगत् को परमात्मा का तनु कहता है। इसी तरह **'तानि सर्वाणि तद्वपुः'** यह विष्णुपुराण का वाक्य जगत् को परमात्मा का वपु बतलाता है। इसी तरह सुबालोपनिषत् तथा अन्तर्यामी ब्राह्मण की श्रुतियाँ संसार की सभी वस्तुओं को यहाँ तक कि जीवात्मा को भी परमात्मा का शरीर बतलाकर जगत् और ब्रह्म में शरीरशरीरीभाव रूप सम्बन्ध को बतलाती हैं।

परमात्मा की दो विभूतियाँ बतलायी गयी हैं, लीला विभूति और त्रिपाद् विभूति। संसार का ही दूसरा नाम लीला विभूति है। महर्षि बादरायण ब्रह्मसूत्र में कहते हैं— **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** परमात्मा के वैकुण्ठ लोक को ही त्रिपाद् विभूति कहा जाता है। इसीलिए परमात्मा को उभय विभूति नायक कहा जाता है। इसी तरह परमात्मा की दो पत्नियों को वेद बतलाता है। उत्तर नारायण का वाक्य कहता है— **'श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'** अर्थात् हे परमात्मन् श्रीदेवी और भूदेवी दोनों आपकी पत्नियाँ हैं।

अर्थपञ्चक विज्ञान का दूसरा प्रमेय है— **'प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः'** अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करने वाले जीवात्मा का स्वरूप क्या है ?

जीवात्मा के स्वरूप का निरूपण

श्रुतियों, स्मृतियों, इतिहासों और पुराणों के अनुसार जीवात्मा देहकृतभेदों से रहित है। देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि तो देहों के भेद हैं जीव के नहीं। ये सभी जितने भी देह देखने में आते हैं, वे सबके सब प्रकृति के परिणाम हैं। प्रकृति ही परिणत होकर अनेक प्रकार के देहों का रूप धारण कर लेती है। विष्णु पुराण में आत्मा (जीवात्मा) के स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया है—

तथात्मा प्रकृतेः संङ्गादहंमानादिदूषितः। भजते प्राकृतान् धर्मानन्यस्तेभ्योऽपि सोऽव्ययः॥
(वि० पु० ६/७/२२)

अर्थात् आत्मा प्राकृत पदार्थों से भिन्न एवं निर्विकार होने पर भी प्रकृति के सम्बन्ध के कारण अहङ्कार आदि दोषों से दूषित होकर प्राकृत धर्मों को अपना मान लेता है। विष्णु पुराण का एक श्लोक कहता है—

पुमान् न देवो न नरो न पशुर्न च पादपः। शरीरकृतभेदास्तु भूपैते कर्मयोनयः॥
(वि० पु० २/१३/९४)

अर्थात् हे राजन्! पुरुष (जीवात्मा) न तो देव है, न मनुष्य है, न पशु है, न वृक्ष है, ये सभी भेद शरीर की आकृति में रहने वाले हैं और कर्म जन्य हैं। इसी तरह तीसरा श्लोक कहता है—

नायं देवो न मर्त्यो वा न तिर्यक् स्थावरोऽपि वा। ज्ञानानन्दमयस्त्वात्मा शेषो हि परमात्मनः॥

अर्थात् यह जीवात्मा न देव है, न मनुष्य हैं, न तिर्यक् (पशु-पक्षी) है और न तो स्थावर है। ये सभी भेद देह के हैं। वास्तविकता यह है कि आत्मा ज्ञानानन्दमय है तथा परमात्मा का शेष है।

इस श्लोक पर विचार करने पर पता चलता है कि जीवों में दो प्रकार के भेद प्रतीत होते हैं— **१. बाह्य, २. आन्तर।** जीवों में प्रतीत होने वाले देव मनुष्य आदि भेद बाह्य भेद हैं और सुखित्व दुःखित्व आदि आभ्यन्तर भेद हैं। ये दोनों भेद औपाधिक हैं। प्रकृति के परिणाम देह और अन्तःकरण इत्यादि उपाधियों से सम्बन्ध के कारण कर्म हैं। पूर्ण रूप से कर्म नष्ट हो जाने पर तो ये उपाधियाँ भी नष्ट हो जायेंगी और आत्मा में इन उपाधियों के सम्बन्ध के कारण होने वाले भेद भी नष्ट हो जायेंगे। उस समय आत्मा अपने वास्तविक रूप से प्रतिभासित होने लगेगी।

आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है। यही आत्मा का स्वाभाविक रूप है। वह स्वयं प्रकाश होने के कारण ज्ञान स्वरूप माना जाता है। आत्मा अपने लिए प्रकाशित होती है यही उसकी अनुकूल भासिता कहलाती है। आत्मा रूपी ज्ञान सदा हृदय में रहता है। उस ज्ञान स्वरूप आत्मा का आश्रय लेकर रहने वाला दूसरा ज्ञान इन्द्रियों से निकलकर विषयों का ग्रहण किया करता है। इसी ज्ञान को धर्मभूत ज्ञान कहते हैं और उसका जो आश्रय ज्ञान है वह ज्ञानवान् है। यह जिस

तरह दीपक रूप तेजो द्रव्य का आश्रय लेकर रहने वाला प्रभा नामक तेजोद्रव्य अपने आश्रय के अतिरिक्त घट, पट आदि विषयों को प्रकाशित करने का काम करता है उसी तरह धर्मभूत ज्ञान भी विषयों का प्रकाशन किया करता है ।

आश्रयभूत ज्ञान ही प्रत्यक् कहलाता है और वहीं **'मैं' 'मैं'** इस रूप से प्रतीत होता है । दूसरा विषयों को ग्रहण करने वाला ज्ञान विषयी कहलाता है ।

इन दोनों ज्ञानों में यह भी अन्तर है कि आश्रयभूत जो ज्ञान है, उसमें कभी भी सङ्कोच विकास नहीं होता है। वह सदा एक समान बना रहता है तथा सदा अनुकूल रूप से ही प्रतीत होता है । दूसरा जो धर्मभूत ज्ञान होता है, उसमें कर्मानुसार सङ्कोच विकास होता रहता है । वह सदा अनुकूल रूप से भी नहीं भासित होता है वह कभी प्रतिकूल प्रतीत होता हुआ दु:ख रूप भी हो जाता है । इन समसत अर्थों को विष्णुपुराण का निम्नांकित वाक्य कहता है—

निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः । दुःखाज्ञानमला धर्माःप्रकृतेस्तेन चात्मनः ॥

अर्थात् आत्मा स्वभावत: आनन्दमय और ज्ञानमय है । वह निर्मल है । दु:ख, अज्ञान और मल इत्यादि प्रकृति के धर्म हैं ये आत्मा के धर्म नहीं है । यही शास्त्र प्रतिपादित जीवात्मा का स्वरूप है । इन आत्माओं की संख्या अनन्त है । जीवों के तीन प्रकार के भेद बतलाये गये है ।

१. बद्ध— इस कोटि के अन्दर संसार के सभी जीव आ जाते हैं ।

२. मुक्त— जो जीव संसार के बन्धन से मुक्त होकर श्रीभगवान् के लोक में चले गये हैं । और **'एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युरविशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः'** श्रुति में प्रोक्त आठो गुण जिनके उदीर्ण हो गये हैं, वे मुक्त जीव कहलाते हैं । मुक्ति प्राप्त जीव संसार के आवागमन से रहित हो जाते हैं।

३. नित्य— वे जीव हैं जो सदा श्रीभगवान् के लोक में ही रहा करते हैं । ये कभी भी संसार में नहीं आते हैं । ये श्रीभगवान् के पार्षद रूप में ही सदा रहते है । ये भी आविर्भूतगुणाष्टक होते हैं । किन्तु मुक्त जीवों से इनकी यह भिन्नता है कि मुक्त जीव मुक्ति प्राप्ति से पहले संसार में रहा करते हैं । मुक्ति प्राप्ति के पश्चात् ही श्रीभगवान् के लोक में जाते हैं । किन्तु नित्य जीव कभी भी संसार में नहीं आते हैं । नित्य जीवों का वर्णन करती हुई श्रुति कहती है—

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।'

इस श्रुति में सूरि शब्द से नित्य जीवों का ही निर्देश किया गया है । नित्य जीवों को नित्य सूरि भी कहते हैं।

अर्थपञ्चक विज्ञान का तीसरा प्रमेय है— **प्राप्त्युपायम्** अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के साधन क्या हैं ? उस साधन का शास्त्रों में विस्तार से वर्णन है । उसको संक्षेप में इस प्रकार से कहा जा सकता है ।

परमात्मप्राप्ति के उपाय

शास्त्रों में परमात्मप्राप्ति के उपाय के रूप में भक्ति को ही बतलाया गया है । उस भक्ति की प्राप्ति के लिए पहले शास्त्रों के माध्यम से तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । उसके पश्चात् तत्त्वज्ञान के साथ अपने वर्णों एवं आश्रमों के लिए विहित कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए । उसके द्वारा चित्त के शुद्ध हो जाने पर भक्तियोग का अभ्यास करना चाहिए । उस भक्तियोग का अभ्यास करने से श्रीभगवान् में ऐसा प्रेम उत्पन्न होता है जो अत्यन्त प्रिय लगने लगता है । वही विशद होकर प्रत्यक्ष के समान बन जाता है । इस प्रकार का प्रेम पूर्ण ध्यान ही परम भक्ति कहलाता है । इसी को परमात्म भक्ति की पूर्वावस्था कहते हैं यह परा भक्ति ही परमात्म प्राप्ति का साधन है । भक्ति शब्द प्रीति विशेष का वाचक है ।

वह प्रीति भी ज्ञान विशेष का बोधक है । इस भक्ति रूपी ज्ञान को लेकर ही शास्त्रों में कहा गया है कि ज्ञान

मोक्ष का साधन है । ज्ञान जब अनुकूल पदार्थों का ग्रहण करता हैं तो वही सुख कहलाता है । ब्रह्म से भिन्न पदार्थों में रहने वाली अनुकूलता सीमित एवं अस्थिर है । ब्रह्म में रहने वाली अनुकूलता नि:सीम और स्थिर है । श्रुति कहती भी है— **आनन्दो ब्रह्म** अर्थात् ब्रह्म आनन्द स्वरूप है ।

ज्ञान की सुख रूपता विषयों के अधीन होती है । इसीलिए ब्रह्म को सुख एवं आनन्द कहा गया है । इसी बात का स्पष्टीकरण है—

'रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।'

अर्थात् ब्रह्म ही रसस्वरूप हैं एवं सुखस्वरूप है । अतएव ब्रह्म को प्राप्त करके जीव सुखी हो जाता है । इसीलिए छान्दोग्यश्रुति कहती है—

'एष संप्रसाद अस्माच्छरीरात्समुत्थाय परमं ज्योतिरुप संपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते ।'

अर्थात् परमात्मा की प्रीति का पात्र बना हुआ जीव इस शरीर से निकलकर परं ज्योति परमात्मा को प्राप्त करके आविर्भूत गुणाष्टक हो जाता है ।

परमात्म प्राप्ति का फल

अर्थपञ्चक विज्ञान का चौथा प्रमेय है— **फलं प्राप्तेः** अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति का फल क्या है ? तो इसका उत्तर है कि परमात्मा की प्राप्ति का फल है परमात्मा के लोक में जाकर परमात्मा के ही सत्य सङ्कल्प से आविर्भूत गुणाष्टक हो जाना । यह आविर्भूत गुणाष्टक हो जाना ही मोक्ष कहलाता है । मुक्तावस्था में जीव परमात्मा के सदृश आकार वाला हो जाता है । इसी को श्रीभगवान् ने भगवद् गीता में कहा है-

मम साधर्म्यमागताः अर्थात् मेरी उपासना करने वाले अनेक जीव मेरे ही समान आविर्भूत गुणाष्टक हो गये। मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रीमल्लोकाचार्य कहते हैं—

मोक्ष का स्वरूप

'अथ परमपुरुषार्थ लक्षणो मोक्षो नाम प्रारब्ध कर्माविशेषाणामवश्यानुभाव्यानां पुण्यपापानां नाशेऽस्ति जायते परिणमते विवर्द्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीत्युक्तप्रकारेण षड्भावविकारास्पदं तापत्रयाश्रयं भगवत् स्वरूपं चावृत्य विपरीतज्ञानोत्पादकं, संसारवर्द्धकं स्थूलशरीरमुपेक्षया त्यक्त्वा सुषुम्ना नाड्या शिर:कपालं भित्वा निर्गत्य सूक्ष्मशरीरेणाकाशं गन्तुं मार्गं प्राप्य उष्णाकिरणमण्डलान्तर्गत्वा सूक्ष्मशरीरं वासनारेणुं च विरजास्नेन दूरीकृत्य सकलतापनिवर्तकामानवकरस्पर्शं प्राप्य शुद्ध सत्त्वात्मकं पञ्चोपनिषन्मयं ज्ञानानन्दजनकं भगवदनुभवैकपरं तेजोमयमप्राकृतविग्रहं लब्ध्वा किरीटयुक्तेष्वमरेषु प्रत्युद्गच्छत्सु श्रीमहामणिमण्डपं प्राप्य लक्ष्मीसहितं भूमिनीलानायकं देवसमूहेषु सेवमानेषु ज्योतिः प्रवाहे आविर्भवद्रूपं श्रीवैकुण्ठनाथं नित्यमनुभूय नित्य कैंकर्य स्वभावतया स्थितिः।'

इस वाक्य के आदि में प्रयुक्त अथ शब्द मङ्गलार्थक है । मुमुक्षु जीव को भी पुण्य पाप रूप प्रारब्ध कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है । उन कर्मों का नाश हो जाने पर वह जीव अस्ति, जायते, परिणमते, विवर्द्धते, अपक्षीयते तथा विनश्यति रूप से वर्णित षड्भाव विकार के विषयभूत तथा तापत्रय के आश्रय परमात्मा के स्वरूप को ढँककर विपरीत ज्ञान को उत्पन्न करने वाले तथा संसार को बढ़ाने वाले इस स्थूल शरीर को उपेक्षा पूर्वक त्याग देता है । इसके बाद वह सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा शिरोभाग में विद्यमान ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर से बाहर निकलता है । उसके पश्चात् सूक्ष्म शरीर के द्वारा आकाश में जाने के मार्ग को प्राप्त करके सूर्यमण्डल के भीतर जाकर विरजा नदी में स्नान के द्वारा सूक्ष्मशरीर तथा वासना का परित्याग करके समस्त तापों को दूर करने वाले अमानवकरस्पर्श को प्राप्त करके शुद्ध सत्त्वात्मक पञ्चोपनिषत् मय ज्ञान तथा आनन्द को उत्पन्न करने वाले जिससे केवल श्रीभगवान् का ही अनुभव किया

जा सकता है ऐसे तेजोमय दिव्य शरीर को प्राप्त करके, किरीट कुण्डलधारी देवों से अगवानी किया जाता हुआ वह जीव महामणि मण्डप में प्रवेश करके श्रीदेवी सहित भूदेवी तथा नीलादेवी के स्वामी तथा देवगण जिनकी सेवा किया करते हैं तथा तेज के प्रवाह में जिनका रूप प्रकट होता है ऐसे श्रीवैकुण्ठनाथ का नित्य ही अनुभव करते हुए श्रीभगवान् के नित्य कैङ्कर्य करने के स्वभाव वाला होकर वैकुण्ठ में बने रहने को ही मोक्ष कहते हैं ।

अर्थपञ्चक विज्ञान का अन्तिम प्रमेय **प्राप्ति विरोधी** है । परमात्मा की प्राप्ति में बाधक बनने वाले पदार्थ भी पाञ्च हैं—

१. देहात्माभिमान तथा अपने को परमात्मा का दास नहीं मानना ।
२. परमात्मा से भिन्न देवता को परा देवता मानना ।
३. मोक्ष से भिन्न धर्म, अर्थ काम आदि को प्राप्त करने की इच्छा करना ।
४. भक्ति की प्राप्ति आदि को छोड़कर दूसरे साधन को अपनाना तथा ।
५. प्रारब्ध शरीर का सम्बन्ध तथा भगवदपचार भागवतापचार एवं असह्यापचार को करना ।

सभी पुराण एवं इतिहास तथा वेद इन्हीं विषयों का ज्ञातव्य रूप से प्रतिपादन करते हैं ।

प्रस्तुत संस्करण में श्रीधर स्वामी प्रणीत भावार्थदीपिका व्याख्या के आलोक में श्रीमद्भागवत के श्लोकों का अनुवाद किया गया है । इसके साथ ही भवार्थदीपिका (श्रीधरी) का भी अनुवाद किया गया है । यद्यपि श्रीमद्भागवत ग्रन्थ की अनेक व्याख्याएँ समुपलब्ध हैं । श्रीस्वामी बल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी का भी प्रणयन किया है । यह व्याख्या अत्यन्त विस्तृत है भी । इसका सम्यगवगाहन करना अत्यन्त कठिन भी है । किन्तु श्रीमद्भागवत की भावार्थ दीपिका का अपना विशिष्ट स्थान है ।

श्रीधर स्वामी अद्वैत दर्शन के प्रख्यात विद्वान हैं । ऐसा होने पर भी भावार्थदीपिका का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि ये किसी भी विषय में दुराग्राही नहीं हैं । ज्ञान के साथ-साथ ये भक्ति का भी सम्यग् रूप से निर्वाह करते हैं । इनकी स्पष्ट धारणा है कि मुक्ति की प्राप्ति में भक्ति का अधिक महत्व है । अथवा यह भी कहा जा सकता है कि भक्ति रूपापन्न ही ज्ञान मुक्ति का साधन है । केवल वाक्यार्थ ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

श्रीधर स्वामी की यह विशेषता है कि वे श्लोक के प्रत्येक पदों का प्रतिपद देते हैं जिससे कि श्लोक के अर्थावगति में कोई कठिनाई नहीं होती है । इसके साथ ही असुरों आदि के द्वारा जो श्रीभगवान् को दुरुक्तियाँ कही गयी हैं, उन सबों का सामान्य अर्थ लिखने के पश्चात् उन श्लोकों का इतनी विचित्रता के साथ पदच्छेद करते है कि उन दुरुक्तियों का अर्थ सदुक्ति परक हो जाता है । यह श्रीधरी की सबसे बड़ी विशेषता है ।

श्रीधर स्वामी का आवास स्थान क्या था यह कोई भी निर्णीत नहीं है । ये भगवान् श्रीराम और भगवान् नृसिंह के भक्त हैं, यह अध्याय के प्रारम्भ में तथा स्कन्ध के प्रारम्भ में उनके द्वारा लिखित मङ्गल श्लोकों से स्पष्ट रूप से पता चलता है । श्रीधर स्वामी नियमत सभी अध्यायों के प्रारम्भ में उस अध्याय के वस्तु निर्देशात्मक श्लोक को लिखते है । इसके अतिरिक्त वे स्कन्ध के प्रारम्भ में उस पूरे स्कन्ध के विषयों का कई श्लोकों में वर्णन कर देते हैं । श्रीमद्भागवत स्तुतियों की दृष्टि से स्तुतियों की खान है । उनमें कुछ स्तुतियाँ इस प्रकार हैं ।

१. कुन्ती स्तुति— इसमें कुन्ती जी ने भगवान् श्रीकृष्ण की भावपूर्ण स्तुति की है ।
२. भीष्म स्तुति— इसमें भीष्म पितामह ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की है ।
३. ब्रह्मा जी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति ।
४. ध्रुव जी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति । आदि

श्रीमद्भागवत के विषय में यह प्रख्याति है कि इसका सात दिनों में श्रवण करने से प्रेतत्व से मुक्ति हो जाती है ।

धुन्धुकारी की तथा गोकर्ण आदि की मुक्ति श्रीमद्भागवत के सप्ताह श्रवण से हो गयी। सात दिनों में ही श्रीशुकदेवजी के मुख से श्रीमद्भागवत का श्रवण करके महाराज परीक्षित् मुक्त हो गये। अतएव यह मुक्ति शास्त्र के नाम से प्रख्यात हैं।

श्रीमद्भागवत का श्रवण प्रेमपूर्वक किया जाय यह आवश्यक है। इसका श्रवण अर्थावगम पूर्वक करने से निश्चित रूप से मुक्ति की प्राप्ति होती है। यदि सम्भव हो तो उपवास करके ही कथा का श्रवण किया जाय। यदि ऐसा न हो सके तो फलाहार आदि करके अथवा भोजन करके ही प्रेमपूर्वक कथा श्रवण किया जाय।

श्रीमद्भागवत कथा को श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को सुनाया अतएव कथा प्रारम्भ करने से पहले श्रीशुकदेवजी को नमस्कार करना चाहिए।

श्रीशुकदेवजी को नमस्कार

शुकदेवजी को नमस्कार करने के निम्नांकित तीन श्लोक हैं। इन श्लोकों का अर्थानुसन्धान करते हुए श्रोता और वक्ता को चाहिए कि वे शुकदेवजी को नमस्कार करें।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुः तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥१॥

अर्थात् जिस समय श्रीशुकदेवजी का यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं हुआ था, उनको लौकिक वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करने का अवसर भी नहीं प्राप्त हुआ था, फिर भी वे अकेले ही संन्यस्त होने की इच्छा से अपने आश्रम से निकल पड़े। शुकदेवजी को अकेले ही वन में जाते हुए देखकर पुत्र वियोग से व्याकुल पिता व्यासजी उन्हें पुत्र-पुत्र कहकर पुकारने लगे। व्याकुल व्यासजी को देखकर तन्मय होने के कारण वृक्षों ने व्यासजी को उत्तर दिया। इस तरह सबों के हृदय में विराजमान रहने वाले श्रीशुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतांतमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥२॥

यह श्रीमद्भागवत महापुराण अत्यन्त गोपनीय रहस्यात्मक है। यह भगवत् स्वरूप का अनुभव कराने वाला है और समस्त वेदों का सार है। संसार के बन्धन में बन्धे हुए जो लोग इस घोर अन्धकारमय संसारार्णव से पार जाना चाहते हैं, उनके लिए आध्यात्मिक तत्त्वों को प्रकाशित करने वाला यह एक अद्वितीय दीपक है। वस्तुतः ऐसे ही जीवों पर करुणा करने के लिए बड़े-बड़े मुनियों के आचार्य श्रीशुकदेवजी ने इस पुराण का वर्णन किया है। इस प्रकार के श्रीव्यासजी के पुत्र शुकदेवजी की मैं शरणागति करता हूँ।

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिर लीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यः तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनध्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥३॥

श्रीशुकदेवजी तो अपने आत्मानन्द में ही निमग्न रहते थे। इस अखण्ड अद्वैत स्थिति से उनकी भेद दृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरली मनोहर श्यामसुन्दर की मधुमय मङ्गलमयी मनोहारिणी लीलाओं ने उनकी वृत्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और उन्होंने जगत् के प्राणियों पर कृपा करके भगवत् तत्त्व को प्रकाशित करने वाले इस महापुराण का विस्तार किया। मैं उन सर्वपापापहारी व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी के चरणों में नमस्कार करता हूँ।

श्रीमद्भागवत की पूजनविधि तथा विनियोग न्यास एवं ध्यान

श्रीमद्भागवत कथा प्रारम्भ होने से एक दिन पहले ही यजमान को क्षौर-कर्म करा लेना चाहिए। उसके पश्चात् प्रात:काल स्नान करके सन्ध्या वन्दन आदि नित्य कृत्यों को समाप्त कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् श्रीभगवान् के स्तोत्रों एवं पदों के द्वारा मङ्गलाचरण करे। तदनन्तर आचमन और प्राणायाम आदि करके हाथ में अक्षत पुष्प लेकर

स्वस्ति वाचन के मन्त्रों से शान्ति पाठ करे। पवित्रकरण, पवित्री धारण और आसन शुद्धि करके स्वस्तिवाचन **आनो भद्रा इत्यादि** मन्त्रों से प्रारम्भ करे।

उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण, व्यासजी, शुकदेवजी तथा श्रीमद्भागवत ग्रन्थ की षोडशोपचार पूजन करना चाहिए। तदनन्तर गणेशजी, वास्तु, सर्वतोभद्र, योगिनी, नवग्रह आदि पीठों की यथालब्धोपचारों से पूजा करनी चाहिए। उसके पश्चात् अधिकार प्राप्ति के लिए सङ्कल्प करे। सङ्कल्प का स्वरूप इस प्रकार है—

ओम् तत्। ॐ विष्णु र्विष्णु र्विष्णुः ओमद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीय परार्धे श्रीश्वेतवाराह कल्पे, वैवस्वत मन्वन्तरे जम्बूद्वीपे, भरत खण्डे आर्यावर्तैक देशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथम चरणे, अमुकनाम्नि संवत्सरे, अमुक संख्याके वैक्रमाब्दे अमुकर्तौ अमुकमासे, अमुक पक्षे, अमुकयोग वारांशकलग्न मुहूर्त कारणान्वितायां शुभपुण्यतिथौ, अमुकवासरान्वितायां अमुकगुत्रोत्पन्नस्य अमुकशर्मणः (वर्मणः गुप्तस्य वा) मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य, गोवर्धन धारणचरणरविन्दप्रसादात् सर्व समृद्धि प्राप्त्यर्थं भगवदनुग्रहपूर्वकभगवदीय प्रेमोपलब्धये च श्रीभगवान्नामात्मक भगवत्स्वरूप श्रीभागवतस्य पाठेऽधिकार सिद्ध्यर्थं श्रीमद्भागवतस्य प्रतिष्ठां पूजनं चऽहं करिष्ये। इसके पश्चात् निम्नांकित मन्त्र को पढ़े।

तदस्तु मित्रा वरुणा तदग्ने, शंयोऽस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां, नमो दिवेबृहते सादनाय॥

इस मन्त्र को पढ़कर श्रीमद्भागवत की सिंहासनादि पर स्थापना करे। उसके पश्चात् पुरुष सूत्र के एक-एक मन्त्र से ग्रन्थ का षोडशोपचार पूजन करे।

पूजन के मन्त्र

श्रीमद्भागवत के आवाहन का मन्त्र

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। सभूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद् **दशाङ्गुलम्॥१॥**
श्रीभगवान्नाम स्वरूपिणे श्रीमद्भागवताय नमः आवाहयामि।

श्रीमद्भागवत को आसन समर्पित करने का मन्त्र

ओम् पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति॥२॥
श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः आसनं समर्पयामि।

श्रीमद्भागवत को पाद्य समर्पित करने का मन्त्र

ओम् एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं **दिवि॥३॥**
श्रीभगवान्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः। पाद्यं समर्पयामि।

श्रीमद्भागवत को अर्घ्य समर्पित करने का मन्त्र

ओम् त्रिपादूर्ध्वउदैत **पुरुषः** पादोऽस्येहाऽभवत् पुनः। **ततो विष्वङ् व्यक्रामत् शासनानशने अभि॥४॥**
श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः। अर्घ्यं समर्पयामि।

श्रीमद्भागवत को आचमन समर्पित करने का मन्त्र

ओम् ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥५॥
श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः। आचमनं समर्पयामि।

श्रीमद्भागवत को स्नान समर्पित करने का मन्त्र

ओम् तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्यांश्च ये ॥६॥

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । स्नानीयं जलं समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को वस्त्र समर्पित करने का मन्त्र

ओम् तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद यजुस्तस्मादजायत ॥७॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । वस्त्रं समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को यज्ञोपवीत समर्पित करने का मन्त्र

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को गन्ध (चन्दन) समर्पित करने का मन्त्र

ओम् तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । गन्धं समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को तुलसीदल और पुष्प आदि समर्पित करने का मन्त्र

ओम् यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादावुच्येते ॥१०॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । तुलसीदलं पुष्पाणि च समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को धूप समर्पित करने का मन्त्र

ओम् ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद् बाहू राजन्यःकृतः । ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥११॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । धूपमाघ्रापयामि ।

श्रीमद्भागवत को घी का दीपक दिखाने का मन्त्र

ओम् चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । दीपं दर्शयामि ।

श्रीमद्भागवत को नैवेद्य समर्पित करने का मन्त्र

ओम् नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१३॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । नैवेद्यं निवेदयामि ।

नैवेद्यानन्तरं मध्ये-मध्ये पानीयं समर्पयामि । उत्तरापोशनं समर्पयामि । तदनन्तरं पञ्चबारं जलं समर्पयेत् प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानय स्वाहा ।

श्रीमद्भागवत को मुखशुद्ध्यर्थ ताम्बूल समर्पित करने का मन्त्र

ओम् यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीद् आज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः । मुखशुद्ध्यर्थं ताम्बूलं समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को दक्षिणा समर्पित करने का मन्त्र

ओम सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि सप्त समिधः कृताः । देवायद् यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थं दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को नमस्कार करने का मन्त्र

ओम् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तुपारे ।
सर्वाणिभूतानि विचित्य धीराः नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते ॥१६॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः नमस्करोमि ।

श्रीमद्भागवत की प्रदक्षिणा करने का मन्त्र

ओम् धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वान् प्ररितश्चतस्त्रः ।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥

भगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

श्रीमद्भागवत को पुष्पाञ्जलि समर्पित करने का मन्त्र

यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

श्रीभगवन्नाम स्वरूपिणे श्रीमते भागवताय नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

इसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण, व्यासजी, शुदकेवजी तथा आचार्य की पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् निम्नांकित मन्त्र को पढ़कर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना करनी चाहिए ।

वन्दे श्रीकृष्णदेवं मुरनरकमिदं वेदवेदान्तवेद्यं लोके भक्तिप्रसिद्धं यदुकुल जलधौ प्रादुरासीदपारे ।
यस्यासीद्रूपमेवं त्रिभुवनतरणे भक्तिवच्च स्वन्तत्रं शास्त्रं रूपं च लोके प्रकटयति मुदा यः स नो भूतिहेतुः॥

अर्थात् जो इस संसार में भक्ति से ही प्राप्त होते हैं, वेदों तथा वेदान्तों के माध्यम से ही जिनके तत्त्व को जाना जा सकता है, जो अपार यदुवंश रूपी समुद्र में प्रकट हुए थे मुर तथा नरकासुर को मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को मैं सप्रेम श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ। जो श्रीभगवान् प्रसन्नता पूर्वक अपने स्वरूप को इस संसार में प्रकट करते हैं, जिनका स्वरूप इस त्रैलोक्य को तारने के लिए भक्ति के ही समान स्वतन्त्र नौका के समान है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण हम सबों का कल्याण करें ।

कृष्ण पादारविन्दाय भक्ताभीष्टप्रदायिने । नमोऽस्तु सततं हार्दम्भोजे मे चकासते ॥

अर्थात् भक्तों के अभीष्ट फल को प्रदान करने वाले तथा मेरे हृदय कमल में सदैव प्रकाशित होते रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों में मेरा प्रणाम है ।

श्रीमद् भागवतं शास्त्रं भगवद्रूपमनामयम् । पूजयनखिलान् कामान् समवाप्नोतीति निश्चितम् ॥

यह श्रीमद्भागवत शास्त्र भगवत् स्वरूप है। जिस तरह श्रीभगवान् में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है उसी तरह श्रीमद्भागवत शास्त्र में भी किसी प्रकार का दोष नहीं है। इस शास्त्र की पूजा करने वाला उपासक अपने समस्त अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेता है यह निश्चित है ।

विनियोग

यजमान को चाहिए कि वह अपने दाहिने हाथ की अनामिका अङ्गुलि में निम्नांकित मन्त्र से कुश की पवित्री धारण करे ।

मन्त्र

पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥

उसके पश्चात् हाथ में जल लेकर निम्नांकित वाक्य को पढ़े और जल को पृथिवी पर गिरा दे ।

विनियोग मन्त्र

ओम् अस्य श्रीमद्भागवताख्यस्य स्तोत्रमन्त्रस्य, नारद ऋषिः । बृहती छन्दः । श्रीकृष्णः परमात्मा देवता। ब्रह्म बीजम् । भक्तिः शक्तिः । ज्ञानवैराग्ये कीलकम् मम सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं श्रीमद् भगवतप्रसादसिद्ध्यर्थं च पाठे विनियोगः ।

अर्थात् इस श्रीमद् भागवत नामक स्तोत्र मन्त्र के ऋषि श्रीनारदजी हैं । इसका बृहती छन्द है । भगवान् श्रीकृष्ण इसके अराध्य देवता हैं । ब्रह्म ही बीज हैं । भक्ति शक्ति है । ज्ञान तथा वैराग्य कीलक हैं । श्रीभगवान् की ही कृपा से अपने सभी अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति के लिए तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने में इस श्रीमद्भागवत के पाठ का उपयोग है ।

न्यासः

विनियोग में पठित समस्त ऋषियों आदि का तथा प्रधान देवता के मन्त्र के अक्षरों को अपने शरीर के विभिन्न अङ्गों में स्थापित किए जाने को ही न्यास कहते हैं । मन्त्र के प्रत्येक अक्षर ज्ञान स्वरूप होते हैं । उन सबों को मूर्तिमान देवता के ही रूप में देखना चाहिए । इन मन्त्रों का न्यास करके मनुष्य स्वयं मन्त्रमय हो जाता है । उसके अन्त:करण में दिव्य चैतन्य का प्रकाश फैल जाता है । मन्त्र के देवता उस रूप में उसकी सदा रक्षा करते हैं ।

'देवो भूत्वा देवं यजेत्' इस सूक्ति के अनुसार अर्चक को चाहिए कि वह स्वयं देव स्वरूप होकर आराध्य देवता की आराधना करे । ऋषियों आदि का न्यास शिर, हृदय आदि कुछ अङ्गों में ही किया जाता है । मन्त्र के अक्षरों का न्यास अङ्गुलियों आदि में किया जाता है । इन सबों को क्रमशः ऋष्यादि न्यास, हृदयादि न्यास तथा करन्यास शब्दों से अभिहित किया जाता है ।

न्यास के द्वारा आभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों प्रकार की शुद्धि होती है, दिव्य बल की प्राप्ति होती है एवं साधना की निर्विघ्न पूर्ति होती है । इसीलिए यहाँ ऋष्यादि न्यास, करन्यास तथा हृदयादि न्यास का उल्लेख किया जा रहा है।

ऋष्यादि न्यास

१. नारदर्षये नमः शिरसि इस मन्त्र को पढ़कर दाहिने हाथ की अङ्गुलियों से शिर का स्पर्श करे । **२. बृहतीच्छन्दसे नमो मुखे** इस मन्त्र से मुख का स्पर्श करे । **३. श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमः हृदि** इस मन्त्र से अपने हृदय का स्पर्श करे । **४. ब्रह्मबीजाय नमः गुह्ये** इस मन्त्र से गुप्ताङ्ग का स्पर्श करके हाथ धो ले । **५. भक्तिशक्तये नमः पादयोः** इस मन्त्र से दोनों पैरों का स्पर्श करे । **६. ज्ञानवैराग्य कीलकाभ्यां नमः नाभौ** इस मन्त्र को पढ़कर अपनी नाभि का स्पर्श करे । **७. विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे** इस मन्त्र को पढ़कर सभी अङ्गों का स्पर्श करें ।

करन्यास

ओं नमो भगवते वासुदेवाय यह श्रीभगवान् का द्वादशाक्षर मन्त्र है । इस मन्त्र के प्रत्येक अक्षरों को प्रणव (ओम्) से सम्पुटित करके दोनों हाथों की अङ्गुलियों में उनकी स्थापना करनी चाहिए ।

ओम् ओम् ओम् नमः दक्षिण-तर्जन्याम् । इस मन्त्र को पढ़कर दाहिने हाथ के अङ्गूठे से दाहिने हाथ की तर्जनी अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् नं ओम् नमः दक्षिणमध्यमायाम्** इस मन्त्र से दाहिने हाथ की मध्यमा अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् मों ओम् नमः दक्षिणअनामिकायाम्** इस मन्त्र को पढ़कर दाहिने हाथ की अनामिका अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् भं ओम् नमः दक्षिण कनिष्ठिकायाम्** इस मन्त्र से दाहिने हाथ की कनिष्ठिका अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् गं ओम् नमः** वामकनिष्ठिकायाम् इस मन्त्र से बायें हाथ के अङ्गूठे से बाये हाथ की कनिष्ठिका अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् वं ओम् नमः वामानामिकायाम्** इस मन्त्र से बायें हाथ के अङ्गूठे से बायें हाथ की अनामिका अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् तें ओम् नमो वाममध्यमायाम्** इस मन्त्र से बाये हाथ के अङ्गूठे से बायें हाथ की मध्यमा अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् वां ओम् नमो वाममतर्जन्याम्** इस मन्त्र से बायें हाथ के अङ्गूटे से बाये हाथ की तर्जनी अङ्गुलि का स्पर्श करे । **ओम् सुं ओम् नमः ओम् दें ओम् नमो** दक्षिणाङ्गुष्ठपर्वणोः इस मन्त्र से दाहिने हाथ की तर्जनी से दाहिने हाथ के अङ्गूठे के दोनों गाठों का स्पर्श करे । **ओम् वां ओम् नमः ओम् यं ओम् नमो** वामांगूष्ठपर्वणोः इस मन्त्र से बायें हाथ की तर्जनी से बायें हाथ के अङ्गूठे की दोनों गांठों का स्पर्श करे ।

अङ्गन्यास

यहाँ द्वादशाक्षर मन्त्र के पदों का हृदय आदि अङ्गों में न्यास करना है ।

ओम् नमो नमो हृदयाय नमः इस मन्त्र को पढ़कर दाहिने हाथ की पाँचों अङ्गुलियों से हृदय का स्पर्श करे। **ओम् भगवते नमः शिरसे स्वाहा** इस मन्त्र को पढ़कर दाहिने हाथ की अङ्गुलियों से सिर का स्पर्श करना चाहिए। **ओम् वासुदेवाय नमः शिखायै वषट्** इस मन्त्र को पढ़कर दाहिने हाथ की पाँचों अङ्गुलियों से शिखा का स्पर्श करे। **ओम् नमो नमः कवचाय हुम्** इस मन्त्र को पढ़कर दायें हाथ की अङ्गुलियों से बायें कन्धे का और बाये हाथ की अङ्गुलियों से दाये कन्धे का स्पर्श करे । **ओम् भगवते नमः नेत्रत्राय वौषट्** इस मन्त्र को पढ़कर दाहिने हाथ की अङ्गुलियों से दोनों नेत्रों का और ललाट के मध्य में गुप्त रूप से स्थित ज्ञाननेत्र का स्पर्श करे । **ओम् वासुदेवाय नमः अस्त्राय फट्** इसका उच्चारण करके दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से वायी ओर से दाहिनी ओर घुमाते हुए पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे लाये और तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाये ।

अङ्गन्यास में आये हुए **स्वाहा, वषट्, हुम् वौषट् और फट्** ये पाँच शब्द देवताओं के उद्देश्य से किए जाने वाले हवन से सम्बन्ध रखते हैं । इनका यहाँ आत्मशुद्धि के ही लिए उच्चारण किया जाता है ।

ध्यान

न्यास करके बाहर भीतर से शुद्ध हुए मन को सब ओर से हटाकर एकाग्रभाव से श्रीभगवान् का ध्यान करना चाहिए।

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै, मण्युत्तमालङ्कृत सर्वगात्रम् । पीताम्बरं काञ्चनचित्रनद्धमालाधरं केशवमभ्युपैमि॥

अर्थात् जिनके सिर पर किरीट, बाहुओं में भुजबन्धन और गले में बहुमूल्य हार सुशोभित हो रहे हैं । मणियों के सुन्दर आभूषणों से जिनके सारे अङ्ग सुशोभित हो रहे हैं और शरीर पर पीताम्बर शोभा पा रहा है, सुवर्ण के तार द्वारा विचित्र ढँग से बन्धी हुई वनमालाको जो धारण किए हैं उन भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र का मैं अपने मन से चिन्तन कर रहा हूँ ।

श्रीमद्भागवत सप्ताह की आवश्यक विधि

श्रीमद्भागवत श्रवण और पाठ करने की विभिन्न प्रयोजनों से विभिन्न विधियाँ बतलायी गयी हैं । किन्तु वर्तमान में एक सप्ताह में श्रीमद्भागवत श्रवण की परम्परा अत्यन्त प्रख्यात हो गयी है और इस परम्परा की महिमा भी अत्यधिक बतलायी गयी है । इसीलिए यहाँ पर श्रीमद्भागवत सप्ताह श्रवण की संक्षिप्त विधि का उल्लेख किया जा रहा है ।

महूर्त विचार

सर्वप्रथम चाहिए कि ज्योतिष शास्त्र के विद्वान् को बुलाकर कथा श्रवण का शुभ मुहूर्त जान लिया जाय। कथा श्रवण के लिए हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा और पूर्वाभाद्र पद नक्षत्र उत्तम माने गये हैं। इसी तरह तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी कथा श्रवण प्रारम्भ करने के लिए उत्तम तिथियाँ बतलायी गयी हैं। दिनों में सोम, बुध, गुरु और शुक्र ये दिन सर्वोत्तम हैं।

तिथि वार और नक्षत्र का विचार करने के साथ ही यह भी देख लेना चाहिए कि शुक्र अथवा गुरु अस्त, बाल अथवा बृद्ध तो नहीं हैं। कथा प्रारम्भ करने का मुहूर्त भद्रा आदि दोषों से रहित होना चाहिए, उस दिन पृथिवी जागती हो तथा श्रोता एवं वक्ता का चन्द्र बल ठीक हो। लग्न में शुभ ग्रहों का योग अथवा उनकी दृष्टि हो। शुभ ग्रहों की स्थिति केन्द्र अथवा त्रिकोण में हो तो उत्तम है।

कथा आरम्भ करने के लिए, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक एवं अगहन (मार्गशीर्ष) के महीने श्रेष्ठ हैं। कुछ विचारकों का मानना है कि चैत्र और पौष मास को छोड़कर सभी महीने ग्राह्य हैं।

कथा के लिए उत्तम और पवित्र स्थान की व्यवस्था होनी चाहिए। जहाँ अधिकाधिक लोग सुविधा पूर्वक बैठ सकें ऐसे ही स्थान में कथा की व्यवस्था करनी चाहिए। नदी का तट, बगीचा, देवमन्दिर अपना निवास ये सभी स्थान कथा के लिए उत्तम हैं। स्थान को स्वच्छ होना चाहिए। नीचे की भूमि गोबर और पीली मिट्टी से लिपी होनी चाहिए। पक्का स्थान हो तो उसे धो देना चाहिए। उस पर पवित्र और सुन्दर आसन बिछा होना चाहिए। ऊपर से चन्दोवा तान दे। चन्दोवा मे नीले वस्त्र को नहीं लगाये।

कथा मण्डप को यजमान के हाथ से सोलह हाथ लम्बा-चौड़ा होना चाहिए। उसको केले के स्तम्भ से सजाये। हरे बाँस के खम्भे लगाये जायँ। बन्दनवार, ध्वजा, पताका तथा मालाओं से उसे सजाये। कथा मण्डप के दक्षिण पश्चिम भाग में वाचक तथा मुख्य श्रोता के बैठने के लिए स्थान हो। शेष भाग में देवताओं और कलश की स्थापना की जाय कथा वाचक के लिए ऊँची चौकी रखे। उस पर शुद्ध गद्दा बिछाए पीछे और बगल में तकिया और मसनद रखे जायँ। श्रीमद्भागवत की स्थापना के लिए छोटी चौकी रखी जाय। उस पर शुद्ध वस्त्र विछा दिया जाय। वस्त्र के ऊपर अष्टदल कमल बनाकर उस पर पूजन करके भागवत की स्थापना करे।

कथा वाचक को विद्वान्, सदाचारी, शास्त्र मर्मवेता और एवं सद्‌गुण सम्पन्न ब्राह्मण होना चाहिए। श्रीमद्भागवत की पुस्तक को अच्छे वस्त्र से आच्छादित करके छत्र चँवर के साथ अपने मस्तक पर रखकर कथा मण्डप में ले आना चाहिए। यदि कथा वाचक उत्तराभिमुख हो तो मुख्य श्रोता को पूर्वाभिमुख होना चाहिए यदि कथा वाचक पूर्वाभिमुख हो तो मुख्य श्रोता को उत्तराभिमुख होना चाहिए।

कथा को अच्छी तरह सम्पन्न करने के लिए दूसरे सुहृदों की सहायता लेनी चाहिए। अर्थ की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। कथा प्रारम्भ होने से एक सप्ताह पहले ही कथा का समाचार भेज कर लोगों से आने का अनुरोध करे। दूसरे समागत अतिथियों के ठहरने और भोजनादि की व्यवस्थ्या होनी चाहिए। कथा प्रारभ होने से एक दिन पहले ही क्षौर कर्म करा ले। सप्ताह प्रारम्भ होने से एक दिन पूर्व ही देवस्थापन और पूजनादि कर ले। कथा की निर्विघ्न समाप्ति के लिए प्रतिदिन गणेशजी की पूजा करनी चाहिए।

सप्ताह प्रारम्भ होने के प्रथम दिन ही यजमान आभ्युदयिक श्राद्ध करे। आभ्युदयिक श्राद्ध पहले भी किया जा सकता है। यज्ञ में इक्कीस दिन पहले आभ्युदयिक श्राद्ध करने का विधान है। उसके पश्चात् गणेश, तथा ब्रह्मा आदि

के साथ नवग्रह, षोडशमातृका, वास्तु, सात चिरंजिवी (अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुरामजी) की पूजा करे । कलश स्थापना करके उसकी पूजा करे । एक चौकी पर सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर उसकी पूजा करे । कलश के ऊपर लक्ष्मीनारायण की सुवर्ण की प्रतिमा स्थापित करे । कलश के बगल में भगवान शालग्राम की मूर्ति स्थापित करे । उसके पश्चात् भगवान् नर-नारायण, गुरु, वायु, सरस्वती, शेष, सनकादि, सांख्यायन, पराशर और बृहस्पति, मैत्रेय तथा उद्धवजी का भी आवाहन करके उनकी पूजा करे । उसके पश्चात् त्रय्यारुणि आदि छह पौराणिकों की स्थापना और पूजा करे । तदनन्तर नारदजी की स्थापना करके उनकी पूजा करे । उसके पश्चात् कथावाचक की वस्त्रालङ्करादि से पूजा करे ।

द्वादशाक्षर मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र के जप के लिए तथा विष्णु सहस्रनाम का पाठ करने के लिए सात, पाँच या तीन ब्राह्मणों का वरण करे । इसके पश्चात् हाथ में पवित्री धारण करके अक्षत, फूल, जल तथा द्रव्य लेकर कथा का महासङ्कल्प करे ।

महासङ्कल्प

ओम् तत् सदद्य श्रीमहाभगवतो विष्णोराज्ञया प्रर्वतमानस्य ब्रह्मणो द्वितीय परार्धे श्रीश्वेत वराहकल्पे, जम्बूदीपे, भरतखण्डे, आर्यावर्ते, विष्णुप्रजापतिक्षेत्रे वैवस्त मनुभोग्यैक-सप्ततियुग-चतुष्टयान्तर्गताष्टाविंशतितमकलिप्रथम चरणे, बौद्धावतारे, अमुकनाम्नि संवत्सरे अमुक संख्याके वैकमाब्दे अमुकायने अमुकर्तौ अमुकराशिस्थिते भगवति सवितरि अमुकराशिस्थिते श्रीदेवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथास्थान स्थितेषु सत्सु महामाङ्गल्य प्रदे मासानां मासोत्तमे अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुक वासरे, अमुक नक्षत्रे अमुक-मुहूर्त-करणादि युतायाम् अमुकतिथौ, अमुकगोत्रः, अमुकप्रवरः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तो दासः) अहं अनेक जन्मार्जित अखिल दुरित निवृत्ति पुरस्सरं ऐहिकाध्यत्मिकादि विविधतापापापनोदनार्थं दशाश्वमेध यज्ञ जन्य सम्यगिष्ट राजसूय यज्ञ सहस्र पुण्य सम्प्राप्तये चन्द्रसूर्य ग्रहण कालिक बहुब्राह्मण सम्प्रदानक सर्वसस्यपूर्ण सर्वरत्नोपशोभितमहीदानपुण्य प्राप्तये, श्रीगोविन्दचरणारविन्द युगले निरन्तरमुत्तरोत्तरमेधमाननिस्सीमप्रेमोपलब्ध्ये तदीय परमानन्दमयगोलोकधाम्नि नित्य निवासपूर्वकतत्परिच- र्यारसास्वादनसौभाग्यसिद्धये च अमुकगोत्रामुकप्रवरामुकशर्म ब्राह्मणवदनार-विन्दाच्छ्रीकृष्णवाङ्मयमूर्तीभूतं श्रीमद्भागवतम् अष्टादशपुराणप्रकृतिभूतम् अनेकश्रोतृश्रवणपूर्वकम् अमुकदिनादारभ्य अमुकदिनपर्यन्तं सप्ताहयज्ञरूपतया श्रोष्यामि ।

प्रारप्स्यमानेऽस्मिन् सप्ताहयज्ञे विघ्नपूगनिवारणपूर्वकं यज्ञरक्षाकरणार्थं गणपति ब्रह्मादि सहित नवग्रह षोडशामातृका सप्तचिरजीवि पुरुष सर्वतोभ्रद मण्डलस्थ देवकलशाद्यर्चनपुरस्सरं श्रीलक्ष्मीनारायण प्रतिमा शालग्राम नरनारायण-गुरु-वायु-सरस्वती-शेष-सनत्कुमार-सांख्यायन-पराशर-बृहस्पति-मैत्रेय-उद्धव-त्रय्यारुणि-कश्यप-रामशिष्याकृत व्रण-वैशम्पायनहारीत-नारदपूजनम् आधारपृष्ठ-पुस्तक-व्यास-पूजनं च यथा लब्धोपचारैः करिष्ये ।

सङ्कल्प के पश्चात् इन सभी देवताओं की अक्षत पुञ्जपर आवाहन तथा स्थापन करके उनकी वैदिक विधि से पूजन करना चाहिए ।

कथा मण्डप में चारो दिशाओं या चारो कोणों में एक-एक कलश और मध्य में एक कलश की स्थापना करके पूर्वकलश पर ऋग्वेद की, दक्षिण कलश पर यजुर्वेद की, पश्चिम कलश पर सामवेद की तथा उत्तर कलश पर अथर्ववेद की पूजा करनी चाहिए ।

पूजा प्रारम्भ होने से पहले रक्षा दीप को प्रज्ज्वलित करके उसे सुरक्षित स्थान पर अक्षत पुञ्ज पर स्थापित करे।

उसके पश्चात् स्वास्तिवाचन, मङ्गल श्लोक के उच्चारण के पश्चात् महासङ्कल्प करे। उसके पश्चात् एक पात्र में चावल भरकर उस पर सुपारी में मौली लपेट कर उसी पर गणेशजी का पूजन करे। पूजन मन्त्र के उच्चारण के अन्त में श्रीगणपतये नमः मन्त्र का उच्चारण करे। सभी उपचारों से पूजन करने के पश्चात् प्रदक्षिणा और साष्टाङ्ग करने के पश्चात् गणेशजी की प्रार्थना करे।

ओम् लम्बोदरं परम सुन्दरमेकदन्तं रक्ताम्बरं त्रिनयनं परमं पवित्रम् ।
उद्यद्दिवाकरकरोज्ज्वलकायकान्तं विघ्नेश्वरं सकलविघ्नहरं नमामि ॥१॥

त्वां देव विघ्नदलनेति च सुन्दरेति, भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति ।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च येस्तुवन्ति, तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ॥२॥

अनयापूजया गणपतिः प्रीयतां न मम ।

इससे गणेशजी को पुष्पाञ्जलि दे।

इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, तथा राहु केतु के नाम मन्त्रों से पूजा करके प्रार्थना करे।

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी, भानुःशशी भूमिसुतोबुधश्च ।
गुरुश्चशुक्रः शनि राहुकेतवः सर्वे ग्रहाःशान्तिकराः भवन्तु ॥

अनेन पूजनेन ब्रह्माविष्णु शिव सहित सूर्यादि नवग्रहाः प्रीयन्ताम् न मम ।

इसके पश्चात् गौरी आदि षोडशमातृकाओं का आवाहन निम्न प्रकार से करे—

१. ओम् गौर्यै नमः, २. ॐ पद्मायै नमः, ३. ॐ शच्यै नमः, ४. ॐ मेधायै नमः, ५. ॐ सावित्र्यै नमः, ६. ॐ विजयायै नमः, ७. ॐ जयायै नमः, ८. ॐ देवसेनायै नमः, ९. ॐ स्वधायै नमः, १०. ॐ स्वाहायै नमः, ११. ॐ मातृभ्यो नमः, १२. ॐ लोकमातृभ्यो नमः, १३. ॐ हृष्ट्यै नमः, १४. ॐ पुष्ट्यै नमः, १५. ॐ तुष्ट्यै नमः, १६. ॐ आत्मनःकुल देवतायै नमः ।

निम्नांकित श्लोक से प्रार्थना करे

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥
हृष्टिः पुष्टिः तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता। इत्येताः मातरः सर्वाः वृद्धिं कुर्वन्तु मे सदा ॥

अनया पूजया गौर्यादि षोडशमातरः प्रीयन्तां न मम ।

इस प्रकार से प्रार्थना समर्पण पूर्वक पुष्प्ञ्जलि करे।

पहले के ही समान नाम मन्त्रों से **चिरजीवियों** की पूजा करें—

१. ॐ अश्वत्थाम्ने नमः, २. ॐ बलये नमः, ३. ॐ व्यासाय नमः, ४. ॐ हनुमते नमः, ५. ॐ विभीषणाय नमः, ६. ॐ कृपाय नमः, ७. ॐ परशुरामाय नमः ।

पूजन के पश्चात् हाथ में पुष्प लेकर प्रार्थना करे।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥
यजमानगृहे नित्यं सुखदाः सिद्धिदाः सदा ।
अनया पूजया अश्वत्थामादि सप्तचिरजीविनः प्रीयन्तां न मम । यह कहकर पुष्प चढ़ा दे।

इसके पश्चात् सर्वतोभद्र मण्डलस्थ देवताओं का आवाहन तथा लक्ष्योपचारों से पूजन करके उसके ऊपर बीच में ताम्रकलश स्थापित करे ।

कलश स्थापना विधि

ॐ भूरसि० इत्यादि मन्त्र से पृथिवी की प्रार्थना करे और कलश के नीचे की भूमि का स्पर्श करे । पृथिवी का स्पर्श करते समय पढ़े—

ॐ महीद्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमीक्षताम् । पिपृतान्नो भरीमभिः । उस भूमि पर कुङ्कुम से अष्टदल कमल बनाये और उस पर सप्तधान्य स्थापित करे । **मन्त्र— 'धान्यमसि' इत्यादि** । सप्तधान्य के ऊपर कलश स्थापित करे। **मन्त्र-आजिघ्र कलश० इत्यादि** उसके पश्चात् कलश को जल से भरे । **मन्त्र-वरुणस्योत्तम्भनमसि० इत्यादि** तदनन्तर **ॐ स्थिरो भव० इत्यादि** मन्त्र से कलश को सुस्थिर करे । कलश के पूर्वभाग में **अग्निमीळे० इत्यादि** मन्त्र से ऋग्वेद की स्थापना करे । दक्षिण भाग में यजुर्वेद की **ॐ इषे त्वोर्जेत्वा० इत्यादि** मन्त्र से स्थापना करे । पश्चिम भाग में **ॐ अग्न आयाहि वीतये०** मन्त्र से सामवेद की स्थापना करे । उत्तर भाग में **ॐ शन्नो देवीरभीष्टय० इत्यादि** मन्त्र से अथर्ववेद की स्थापना करे । उसके बाद कलश में आम, पिप्पल, बड़, गूलर एवं पाकड़ के पल्लवों को डाले। उसका मन्त्र है— **अश्वत्थे वो निषदनम्० इत्यादि ॐ काण्डात् काण्डात्** मन्त्र से दूर्वादल डाले, **ॐ पवित्रेस्थो० मन्त्र** से कुश डाले **ॐ या फलिनी० इत्यादि** से सुपारी डाले, **ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे० इत्यादि** से दक्षिणा डाले, **ॐ परिवाजपतिः इत्यादि** से पञ्चरत्न डाले, **ॐ या ओषधी० इत्यादि** से सर्वौषधि डाले । **ॐ गन्धद्वारां० इत्यादि** से गन्ध (चन्दन) डाले, **ॐ अक्षन्नमीमदन्त० इत्यादि** मन्त्र से अक्षत डाले, **ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च० इत्यादि** से फूल छोड़े । **ॐ धूरसि०** से धूप की आहुति अग्नि में डाले, **ॐ अग्निर्ज्योति०** से दीप दिखाये । **ॐ पञ्चनद्यः** से तीर्थोदक डाले, **ॐ उपह्वरे० इत्यादि** मन्त्र से नदी के सङ्गम का जल डाले । **ॐ समुद्राय त्वा०** मन्त्र से समुद्र का जल डाले । **ॐ स्योना पृथिवी० इत्यादि** से सप्तमृत्तिका डाले । **ॐ वसोः पवित्रमसि० इत्यादि** से कलश को वस्त्र से आच्छादित करे । **ॐ पूर्णादर्वी** से कलश पर पूर्णपात्र रखे, **ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च** से उस पर गिरि गोला लाल कपड़े में लपेट कर रखे । फिर हाथ में अक्षत लेकर **ॐ मनोजूतिः इत्यादि** से कलश पर अक्षत छोड़कर कलश की प्रतिष्ठा करे । **ॐ सर्वे समुद्रा० इत्यादि** मन्त्र से कलश में तीर्थों का आवाहन और पूजन करके कलश की प्रार्थना करे

कलश की प्रार्थना

देवदानव संवादे मथ्यमाने महोदधौ। उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः। त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः । आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः । त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमिहे जलोद्भव ॥
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा। ब्राह्मणैर्निर्मितस्त्वं हि मन्त्रैरेवामृतोद्भवैः ॥

प्रार्थयामि च कुम्भ त्वां वाञ्छितार्थं ददस्वमे ।
पुरा हि सृष्टश्च पितामहेन, महोत्सवानां प्रथमो वरिष्ठः ।
दुर्वाप्रसाश्वत्थ सुपल्लवैर्युक्, करोतु शान्तिं कलशः सुवासाः ॥

प्रार्थना के पश्चात् **'ॐ गणानां त्वा'** मन्त्र से गणेशजी की तथा **'ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा' इत्यादि** मन्त्र से वरुण देवता का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए । षोडशोपचार पूजन करके—

अनया पूजया वरुणाद्यावाहिताः देवताः प्रीयन्ताम् न मम कहकर फूल चढ़ाये ।

उसके पश्चात् कलश के ऊपर लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा को संस्कार सम्पन्न करके प्रतिमा की स्थापना तथा उसकी षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से करे । पूजन के पश्चात् प्रार्थना करे ।

ब्रह्मसत्रं करिष्यामि तवानुग्रहतो विभो । तन्निर्विघ्नं भवेद्देव रमानाथ क्षमस्व मे ॥

अनया पूजया लक्ष्मीविशिष्टो भगवान् नारायणः प्रीयतां न मम । इस तरह से कहकर श्रीभगवान् पर पुष्पाञ्जलि चढ़ाये ।

उसके पश्चात् **'नरनारायणाभ्यां नमः'** कहकर भगवान् नरनारायण का आवाहन करके निम्नांकित मन्त्र से प्रार्थना करे ।

यो मायया विरचितं निजमात्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।
एतेन धर्मसदने ऋर्षिमूर्तिनाद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥
सोऽयं स्थिति व्यतिकरो प्रशमाय सृष्टान्, सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेय तत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन, यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ॥

अनेन पूजनेन भगवन्तौ नरनारायणौ प्रीयेतां न मम ।

उसके पश्चात् वक्ता और श्रोताओं के समस्त विकारों को दूर करने के लिए वायु देवता की पूजा करे ।

'ॐ सर्वकल्याण कर्त्रे वायवे नमः' से आवाहन करके पूजन करे । पूजन के पश्चात् प्रार्थना करे—

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो विभर्त्यात्मकेतुभिः । अन्तर्यामीश्वरः साक्षात् पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥

अनेन पूजनेनवायुदेवता प्रीयताम् न मम ।

उसके पश्चात् **गुं गुरवे नमः** कहकर गुरु की पूजा करे । पूजन के पश्चात् प्रार्थना करे ।

ब्रह्मस्थानसरोजमध्यविलसच्छीतांशु पीठस्थितम्, स्फूर्जत्सूर्यरुचिं वराभयकरं कर्पूरकुन्दोज्ज्वलम् ।
श्वेतस्त्रग्वसनानुलेपनयुतं विद्युद्रुचा कान्तया, संश्लिष्टार्धतनुं प्रसन्नवदनं वन्दे गुरुं सादरम् ॥

अनया पूजया गुरुदेवः प्रीयतां न मम ।

उसके पश्चात् श्वेतपुष्प आदि से सरस्वती की पूजा करे । पूजन के पश्चात् निम्नांकित प्रकार से प्रार्थना करे ।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता, या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेत पद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशङ्कर प्रभृतिभिर्देवैः सदावन्दिता, सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥

अनया पूजया भगवती सरस्वती प्रीयतां न मम ।

उसके पश्चात् निम्नांकित मन्त्रों से शेष आदि की पूजा करे । **ॐ शेषाय नमः, ॐ सनत्कुमाराय नमः, ॐ सांख्यायनाय नमः, ॐ पराशराय नमः, ॐ बृहस्पतये नमः, ॐ मैत्रेयाय नमः, ॐ उद्धवाय नमः ।**

पूजन के पश्चात् प्रार्थना करे ।

शेषः सनत्कुमारश्च सांख्यायन पराशरौ । बृहस्पतिश्च मैत्रेय उद्धवश्चात्र कर्मणि ॥
प्रत्यूहवृन्दं सततं हरन्तां पूजिता मया ॥

अनेन पूजनेन शेष-सनत्कुमार-संख्यायन-पराशर-बृहस्पति-मैत्रेय-उद्धवाः प्रीयन्तां न मम ।

उसके पश्चात् छह पौराणिकों की पूजा करे ।

ॐ त्र्य्यारुणये नमः, ॐ कश्यपाय नमः, ॐ रामशिष्याय नमः, ॐ अकृतव्रणाय नमः, ॐ वैशम्पायनाय नमः, ॐ हरिताय नमः ।

प्रार्थना के मन्त्र

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च रामशिष्योऽकृतव्रणः । वैशमपायन हारीतौ षड्वै पौराणिकाः इमे ।
सुखदाः सन्तु मे नित्यमनया पूजयार्चिताः ।।

अनेन पूजनेन त्र्यारुणि प्रभृतयः षट् पौराणिकाः प्रीयन्तां न मम ।

उसके पश्चात् व्यासजी की **ओम् नमो भगवते व्यासाय** से आवाहन करके पूजन करे तथा उनकी प्रार्थना करे।

नमस्तस्मैभगवते व्यासायामित तेजसे । पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ।।

अनया पूजया भगवान् व्यासः प्रीयतां नमः ।

उसके पश्चात् सप्ताह यज्ञ के उपदेशक भगवान् सूर्य का आवाहन करके प्रतिदिन उनकी पूजा करे । आवाहन का मन्त्र है— **'ओम् सूर्याय नमः ।'**

प्रार्थना के मन्त्र

लोकेशत्वं जगच्चक्षुः सत्कर्म तव भाषितम् । करोमि तच्च निर्विघ्नं पूर्णमस्तु त्वदर्चनात् ।।

अनया पूजया सप्ताहयज्ञोपदेष्टा भगवान् सूर्यः प्रीयताम् न मम ।

उसके पश्चात् दशावतारों और शुकदेवजी का आवाहन और स्थापना करके उनकी पूजा करे ।

फिर नारद पीठ और पुस्तक पीठ दोनों की एक ही साथ पूजन करे । पीठ पर चन्दन से अष्टदल कमल बनायें और उसमे आधार शक्ति आदि की कल्पना निम्नांकित मन्त्रों से करे ।

ॐ आधार शक्तये नमः, ॐ मूलप्रकृतये नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ श्वेतद्वीपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ रत्नमण्डपाय नमः, ॐ रत्न सिंहासनाय नमः ।

इन मन्त्रों से दोनों पीठों में आधार शक्ति आदि की पूजा करे । फिर पूर्व आदि चारो दिशाओं में निम्नांकित मन्त्रों से धर्मादि की भावना करे । **ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः** इसके बाद इनकी पूजा करे ।

पीठों के मध्य में **'अनन्ताय नमः'** से अनन्त की और **ॐ महापद्माय नमः** से महापद्म की पूजा करे । उस महापद्म का मूल आनन्दमय है और उसकी नाल संवित्स्वरूप है, उसके दल प्रकृतिमय है, उसके केसर विकृतिमय हैं उसके बीज पञ्चाशत् पर्ण स्वरूप हैं और उनसे ही उस महापद्म की कर्णिका विभूषित है । उस कर्णिका में अर्कमण्डल, सोम मण्डल और वह्निमण्डल की स्थिति है । वहीं प्रबोधक सत्त्व, रज एवं तम भी विराजमान हैं । इस तरह से भावना करके उनकी पञ्चोपचार पूजा करे । उसके मन्त्र हैं—

१. ॐ आनन्द कन्दाय नमः, २. ॐ संविन्नालाय नमः, ३. ॐ प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नमः, ४. ॐ विकृतिमय केसरेभ्यो नमः, ५. ॐ पञ्चाशद्बीज भूषितायै कर्णिकायै नमः, ६. ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः, ७. ॐ सं सोममण्डलाय नमः ८. ॐ वं वह्निमण्डलाय नमः, ९. ॐ सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः १०. ॐ रं रजसे नमः, ११. ॐ तं तमसे नमः ।

इसके पश्चात् कमल की पूर्वादि आठो दिशाओं में विमला आदि आठ शक्तियों की पूजा निम्नांकित मन्त्रों से करे।

१. ॐ विमलायै नमः, २. ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ३. ॐ ज्ञानायै नमः, ४. ॐ क्रियायै नमः, ५. ॐ योगायै नमः, ६. ॐ प्रह्वयै नमः, ७. ॐ सत्यायै नमः, ८. ॐ ईशानायै नमः ।

कमल के मध्य में अनुग्रहा शक्ति की '**ॐ अनुग्रहायै नमः**' से पूजा करे ।

उसके पश्चात् **ॐ नमो भगवते सर्वभूतात्मने वासुदेवाय पद्मपीठात्मने नमः** कहकर उस पर सुन्दर वस्त्र बिछा दे । फिर हाथ में श्रीमद्भागवत की पुस्तक को लेकर उसके ऊपर स्थापित करे ।

ॐ ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा सा पर्वता इमे । ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामसि ॥

मनो जूतिः इत्यादि मन्त्र से पुस्तक की प्रतिष्ठा करके पुरुष सूक्त के षोडश मन्त्रों से षोडशोपचार से पूजा करे। उसके पश्चात् दूसरे पीठ को श्वेत वस्त्र से आच्छादित करके उस पर देवर्षि नारद की स्थापना करे और **सुरर्षिवर नारदाय नमः** से उनकी सविधि पूजा करे । उसके पश्चात् प्रार्थना करे ।

प्रार्थना मन्त्र

नमस्तुभ्यं भगवते ज्ञानवैराग्यशालिने । नारदाय सर्वलोके पूजिताय सुरर्षये ॥

अनया पूजया देवर्षिः नारदः प्रीयतां न मम ।

आचार्य का वरण

यजमान पुष्प, चन्दन, ताम्बूल, वस्त्र, दक्षिणा, सुपारी तथा रक्षासूत्र हाथ में लेकर— **ॐ अद्यामुक गोत्रममुकप्रवरममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः वरणद्रव्यैः सर्वेष्टद श्रीमद्भागवत वक्तृत्वेन भवन्तमहं वृणे ।** इस वाक्य को कहकर आचार्य का वरण करे और हाथ की सारी सामग्री आचार्य को समर्पित कर दे । उन सबों को स्वीकार करके आचार्य कहें **वृतोऽस्मि ।**

आचार्य वरण के पश्चात् उन्हीं सारी सामग्रियों को हाथ में लेकर यजमान जप तथा पाठ करने वाले ब्राह्मणों का भी वरण करे ।

वरण का सङ्कल्प

अद्याहममुकगोत्रान् अमुकप्रवरान् अमुक शर्माणः अमुकसंख्याकान् ब्राह्मणानेभिः वरणद्रव्यैः गाथाविघ्ना-पनोदनार्थं गणेश गायत्री वासुदेव मन्त्र जप कर्तृत्वेन गीता विष्णु सहस्रनाम पाठ कर्तृत्वेन वो विभज्य वृणे ।

इस तरह कहकर वह सामग्री उन ब्राह्मणों को अलग-अलग करके दे दें । सामग्रियों को लेकर ब्राह्मण कहें **वृताः स्म** । उसके बाद आचार्य आदि के हाथ में यजमान रक्षा सूत्र को बाँध दे । उस समय निम्नांकित मन्त्र पढ़ें ।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

रक्षा बाँधने के बाद यजमान आचार्यादि के ललाट में तिलक लगा दे । उसके बाद यजमान हाथ में पीला चावल लेकर चारो ओर रक्षा के लिए विखेरे ।

अक्षत विखेरने का मन्त्र

पूर्वे नारायणः पातु वारिजाक्षश्च दक्षिणे। पश्चिमे पातु गोविन्द उत्तरे मधुसूदनः ॥
ऐशान्यां वामनः पातु चाग्नेयां च जनार्दनः । नैऋत्यां पद्मनाभश्च वायव्यां माधवस्तथा ॥
ऊर्ध्वं गोवर्धनधरो ह्यधस्ताच्च त्रिविक्रमः । रक्षाहीनं तु यत्स्थानं तत्सर्वं रक्षतां हरिः ॥

इसके पश्चात् आचार्य यजमान के हाथ में निम्नांकित मन्त्र से कलावा बाँधें ।

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षेन्माचल माचल ॥

निम्नांकित मन्त्र से यजमान के ललाट में तिलक लगाना चाहिए ।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः । तिलकं ते प्रयच्छन्तु धर्मकामार्थ सिद्धये ॥

इसके पश्चात् यजमान व्यासासन की चन्दन आदि से पूजा करे । मन्त्र है— **व्यासासनाय नमः ।**

इसके पश्चात् आचार्य व्यासासन पर बैठें । तदनन्तर यजमान **ॐ नमः पुराणपुरुषोत्तमाय** इस मन्त्र से पुस्तक की पूजा करें । आचार्य की पूजा यजमान निम्नांकित श्लोक पढ़कर करें ।

जयति पराशर सूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः । यस्यास्यकमल गलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥

तदनन्तर निम्नांकित श्लोक से आचार्य की प्रार्थना करें ।

शुकदेव प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्र विशारद । एतत् कथा प्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे । कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात् ॥

उसके पश्चात् निम्नलिखित श्लोक पढ़कर भागवत पर पुष्प चढाये ।

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षं कृष्ण एव हि। स्वीकृतोऽसि मयानाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥
मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया। निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥

कथा मण्डप में वायु रूपधारी आतिवाहिक शरीर वाले जीव विशेष के लिए सात गाँठ के एक बाँस को भी स्थापित कर देना चाहिए । इसके पश्चात् कथा वाचक को श्रीभगवान् का स्मरण करके श्रीमद्भागवत की कथा श्रोताओं को सुनाना चाहिए । कथा समाप्ति के पश्चात् पुस्तक तथा व्यास की आरती करनी चाहिए । दूसरे दिन से प्रतिदिन देवपूजन के पश्चात् कथा प्रारम्भ करे । कथा समाप्ति के पश्चात् कथा वाचक की पूजा और आरती करनी चाहिए । प्रसाद और तुलसीदल का वितरण करना चाहिए । कथा के समाप्त हो जाने पर समयानुसार कीर्तन करना चाहिए ।

वक्ता को कथा प्रारम्भ करने से पूर्व एक सौ आठ बार **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय** इस द्वादशाक्षर मन्त्र का अथवा '**ओम् क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनबल्लभाय स्वाहा ।**' इस मन्त्र का जप कर लेना चाहिए ।

श्रीमद्भागवत का विनियोग

ओम् अस्य श्रीमद्भागवताख्य स्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः बृहतीच्छन्दः श्रीकृष्ण परमात्मा देवता, ब्रह्म बीजं, भक्तिः शक्तिः ज्ञानवैराग्य कीलकम् मम श्रीमद्भागवत प्रसाद सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः । इसके बाद निम्नांकित न्यास करे ।

ऋष्यादिन्यास

नारदर्षये नमः शिरसि । बृहतीच्छदसे नमः मुखे । श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमः हृदि । ब्रह्म बीजाय नमः गुह्ये । भक्तिशक्तये नमः पादयोः । ज्ञान वैराग्यकीलकाभ्यां नमः नाभौ । श्रीमद्भागवतप्रसाद सिद्ध्यर्थक पाठ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यास

ॐ क्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ क्लीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ क्लूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ क्लैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ क्लौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अङ्गन्यास

ॐ क्लां हृदयाय नमः । ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लूं शिखायै वषट् ॐ क्लैं कवचाय हुम्। ॐ क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ क्लः अस्त्राय फट् ।

इसके पश्चात् निम्नांकित मन्त्र से श्रीभगवान् का ध्यान करें ।

ध्यान

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम् नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम् ॥
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली, गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणिः ॥
अस्तिस्वस्तरुणीकराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं, वस्तु प्रस्तुतवेणुनाद लहरी निर्वाण निर्व्याकुलम् ॥
स्रस्तस्त्रस्तनिबद्धनीविविलसद्गोपीसहस्रावृतं, हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारं किशोरकृतिः ॥

इसके पश्चात् कथा प्रारम्भ करे। सूर्योदय से लेकर प्रतिदिन साढ़े तीन प्रहर तक कथा बाँचे। मध्याह्न में दो घड़ी का विश्राम रखे। प्रातः काल से मध्याह्न तक पाठ बाँचे और मध्याह्न से सायं काल तक कथा का भावार्थ अपनी भाषा में सुनाये।

श्रोता को चाहिए कि वह एक बार हविष्यान्न का भोजन करे गरिष्ठ अथवा अमेध्य वस्तुओं का भोजन नहीं करना चाहिए। हल्का भोजन करना चाहिए। वक्ता को चाहिए कि वे कथा का विश्राम प्रतिदिन नियत स्थल पर ही करें। पहले दिन मनुशतरूपा संवाद तक कथा कहे। दूसरे दिन भरतचरित तक। तीसरे दिन सातवें स्कन्ध की समाप्ति तक कहे। चौथे दिन श्रीकृष्ण जन्म तक कि कथा कहे। पाँचवें दिन रुक्मिणी विवाह पर्यन्त तक की कथा कहे। छठे दिन हंसोपाख्यान तक की कथा कहे और सातवें दिन अवशिष्ट भाग को पूरा कर दें।

मनुकर्दम संवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि। भरताख्यान पर्यन्तं द्वितीयेऽहनि वाचयेत् ॥
तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्ध पूरणम्। कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थे दिवसे वदेत् ॥
रुक्मिण्युद्वाह पर्यन्तं पञ्चमेऽहनि शस्यते। श्रीहंसाख्यान पर्यन्तं षष्ठेऽहनि वदेत् सुधीः ॥
सप्तमेतु दिने कुर्यात् पूर्णं भागवतस्य वै। एवं निर्विध्नतासिद्धिर्विपर्यय इतोऽन्यथा ॥

कथा समाप्ति के दूसरे दिन सम्पूर्ण देवताओं की पूजा के पश्चात् हवन की वेदी पर पञ्चभू संस्कार करके अग्नि की स्थापना और कुशकण्डिका करे। फिर वृत्त ब्राह्मणों द्वारा हवन तर्पण और मार्जन करके श्रीमद्भागव की शोभा यात्रा निकाले। मधु मिश्रित खीर और तिल आदि से अठारह सौ आहुति देनी चाहिए। खीर के अभाव में साकल्य से और घी से आहुति दे। आहुति गायत्री मन्त्र अथवा दशम स्कन्ध के श्लोकों से दे।

होम के अन्त में दिक्पाल आदि को बलि दे। फिर क्षेत्रपाल पूजन और छायापात्र का दान करे। अन्तिम आरती के पश्चात् अवभृथ स्नान करे। ब्राह्मणों को भोजन कराये। सुवर्ण दान और गोदान करें। भागवत की पूजा करके दक्षिणा सहित उसे आचार्य को दान दे देना चाहिए। सभी प्रकार की त्रुटि की पूर्ति के लिए श्रीविष्णु सहस्रनाम का पाठ करे।

सप्ताह कथा के प्रारम्भ में संग्राह्य सामग्री

पूजन सामग्री

गङ्गाजल, रोली, मौली, चन्दन, केसर, कर्पूर, पुष्प, पुष्पमाला, तुलसीदल, विल्वपत्र, दुर्वादल, धूप, अगरबत्ती, पञ्चामृत, (दूध, दही, घी, चीनी, शहद) दीप, गोघृत, रुई, पान का पत्ता पचास, सुपारी ५०, यज्ञोपवीत (२५), इलायची, लवंग, पेड़ा, मेवा, गुड़, चावल, गेहूँ, गेहूँ बोने के लिए दो गमले, पीली सरसो, अबीर, गुलाल, फल (केला, संतरा आदि) सफेद कपड़ा, ५ गज, लाल कपड़ा ५ गज, पीला कपड़ा ५ गज, रेशमी कपड़ा १.५ गज, रंग (हरा, पीला, काला, लाल, और गुलाबी) नारियल, सात, इत्र, कुश, सिन्दूर, छूटा सिक्का, आरती पात्र, घण्टा घड़ियाल, शङ्ख, झाँझ आदि, कोसा ५०, माचिस, सर्वतोभद्र की चौकी १, नवग्रह की चौकी १, नारदजी के लिए चौकी १, षोडश मातृका के लिए चौकी १, गणेशजी के लिए चौकी १, शुकदेवजी, सप्तचिरजीवी, तथा पौराणिकों के लिए १-१। पटरी शेष तथा सनत्कुमार के लिए पटरी एक।

कलश स्थापना की सामग्री

ताम्र कलश- १, कांसे का कलश- १, मिट्टी के कलश पाँच, सप्त धन्य (यव, गेहूँ, धान, तिल, कंगनी, सावाँ चना) पञ्चपल्लव (आम, पीपल, पाकड़, गूलर, बड़ का डंठल सहित पता) दूर्वा, कुश, सुपारी, दक्षिणा, चन्दन, अक्षत, फूल, तीर्थोदक, समुद्र का जल, सप्तमृत्तिका (घुड़साल, हाथी साल, दीमक, नदी सङ्गम राजद्वार, गोशाला और तालाब) की मिट्टी, सर्वौषधि (कूट, जटामासी, हल्दी खड़ी, रामट, मुरा, शैलेभ, चन्दन, बचा चम्पक और नागरमोथा, नदी के सङ्गम का जल, लक्ष्मी नारायण की सुवर्ण की प्रतिमा ।

कथा मण्डप की सामग्री

चँदोवा का कपड़ा, चौकोर मण्डप, केले के स्तम्भ, बाँस के स्तम्भ, मण्डप के चारो ओर से माला, फूल, पत्ते, चारो दिशाओं में झंडी, वस्त्र और गोटे मण्डप सजाने के लिए । कथा वाचक के लिए चौकी, नया गद्दा, मसनद, तकिया, कम्बल, चादर, पाँच झंडियाँ, पुस्तक बाँधने के लिए वेष्टन, पुस्तक के लिए वेदी, आम के पत्तों का बँदनवार। गणेशजी, देवता, श्रीमद्भागवत, आचार्य की पूजा के लिए प्रतिदिन चन्दन, पुष्प, पुष्पमाला, धूप और दीप आदि । प्रतिदिन ।

वरण सामग्री

वक्ता के लिए चादर, धोती, गमछा, आसन, दक्षिणा, तुलसी माला, जल पात्र, जप आदि करने वालों के लिए यथा सम्भव वस्त्र और द्रव्य आदि ।

पाठ के लिए पुस्तक

भागवत, रामायण, गीता और विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र ।

हवन की सामग्री

वेदी के लिए स्वच्छ बालू, एक बोरा, आम की सुखी लकड़ी दो मन, कुशकण्डिका के लिए कुश, दूर्वा (अग्नि रखने के लिए दो काँस्य पात्र) एक पूर्ण पात्र (भगौना) ।

यज्ञपात्र

प्रणीता, प्रोक्षणी, स्रुवा, स्रुक्, पूर्णाहुति पात्र, काँसे की चरुस्थाली, आज्य स्थाली (काँसे का बड़ा कटोरा)

हवनीय पदार्थ

मधुमिश्रित खीर, छाया पात्र (घी भरकर काँसे की कटोरी) तिल १० सेर, चावल ५ सेर, यव २.५ सेर, घी ४ सेर, पञ्चमेवा २ सेर । बलि के लिए पापड़, उड़द, दही, चावल, रुई की बत्ती, दक्षिणा, क्षेत्रपाल बलि के लिए हँड़िया, काजल, सिन्दूर, दीपक, दक्षिणा आदि । पूर्णाहुति के लिए गिरिगोला, वितरण के लिए प्रसाद, ब्राह्मण भोजन के लिए मधुमिश्रित खीर पूड़ी साग आदि। हवन कर्त्ता ब्राह्मणों के लिए वरण और दक्षिणा । कथा समाप्ति के पश्चात् कथा वाचक को वस्त्र, आभूषण और दक्षिणा आदि ।

अक्षय तृतीया विक्रम संवत् २०७८
मंगलवार ७ मई, २०१९

भागवतों का विधेय
शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
१०/१/२०, कटरा, निकट कटरा पुलिस चौकी
श्रीअयोध्याजी, उ० प्र० ।

विषयानुक्रम

माहात्म्य

प्रथम स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

द्वितीयस्कन्ध

तृतीय स्कन्ध

चतुर्थ स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१५	महाराज पृथु का अविर्भाव ओर उनका राज्याभिषेक	१३००
१६	बन्दीजनों द्वारा महाराज पृथु की स्तुति	१३०७
१७	महाराज पृथु का पृथिवी पर कोप और पृथिवी द्वारा उनकी स्तुति	१३१६
१८	पृथ्वी का दोहन	१३२७
१९	महाराज पृथु के सौ अश्वमेघ यज्ञ	१३३६
२०	महाराज विष्णु की यज्ञशाला में भगवान् विष्णु का प्राकट्य	१३४८
२१	महाराज पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश	१३६२
२२	महाराज पृथु को सनकादि का उपदेश	१३८०
२३	महराज पृथु की तपस्या और परलोक गमन	१४०२
२४	पृथु की वंश परम्परा और प्रचेताओं को रुद्र का उपदेश	१४१४
२५	पुरञ्जनोपाख्यान का प्रारम्भ	१४४१
२६	राजा पुरञ्जन का आखेट के लिए वन में जाना और रानी का क्रुद्ध होना	१४६१
२७	पुरञ्जनपुरी पर चण्डवेग का आक्रमण और कालकन्या का चरित्र	१४७०
२८	पुरञ्जन को स्त्री योनि की प्राप्ति और अविज्ञान के उपदेश से उसकी मुक्ति	१४७९
२९	पुरञ्जनोपाख्यान का तात्पर्य	१४९९
३०	प्रचेताओं को भगवान् विष्णु का वरदान	१५२९
३१	प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश और उनका परमपद लाभ	१५४६

पाँचवाँ स्कन्ध

१	प्रियव्रत चरित्र	१५५८
२	आग्नीध्र चरित्र	१५७६
३	राजा नाभि का चरित्र	१५८६
४	ऋषभदेवजी का राज्य शासन	१५९४
५	ऋषभदेवजी का अपने पुत्रों को उपदश और स्वयं अवधूत वृत्ति का ग्रहण	१६००
६	ऋषभदेव का देहत्याग करना	१६१७
७	भरत चरित्र	१६२५
८	भरतजी का मृग के मोह में पड़कर मृग की योनि में जन्म लेना	१६३२
९	भरतजी का ब्राह्मण वंश में जन्म	१६४३
१०	जड भरत और रहूगण की भेंट	१६५२
११	राजा रहूगण को भरतजी का उपदेश	१६६४
१२	राजा रहूगण का प्रश्न और भरतजी का समाधान	१६७३
१३	भवाटवी का वर्णन और रहूगण का संशय नाश	१६८१

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१४	भवाटवी का स्पष्टीकरण	१६९३
१५	भरतजी के वंश का वर्णन	१७११
१६	भुवन कोश का वर्णन	१७१६
१७	गङ्गाजी का विवरण और भगवान् शङ्कर कृत सङ्कर्षण देव की स्तुति	१७२६
१८	भिन्न-भिन्न वर्षों का वर्णन	१७३७
१९	किम्पुरुष और भारतवर्ष का वर्णन	१७५४
२०	जम्बूद्वीप से भिन्न छह द्वीपों का वर्णन	१७६७
२१	सूर्य के रथ और उसकी गति का वर्णन	१७८०
२२	भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति और गति का वर्णन	१७८८
२३	शिशुमार चक्र का वर्णन	१७९४
२४	राहु आदि की स्थिति तथा अतल आदि नीचे के लोकों का वर्णन	१७९८
२५	श्रीसङ्कर्षणदेव का विवरण और स्तुति	१८११
२६	नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन	१८१७

छठा स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१	अजामिलोपाख्यान का प्रारम्भ	१८३२
२	भगवान् विष्णु के दूतों के द्वारा भागवत धर्म का निरूपण और अजामिल का परम धाम गमन	१८५५
३	यम और यमदूतों का संवाद	१८७२
४	दक्ष प्रजापति के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और श्रीभगवान् का प्रादुर्भाव	१८८७
५	श्रीनारदजी के उपदेश से दक्ष पुत्रों की विरक्ति और नारदजी को दक्ष का शाप	१९०७
६	दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं के वंश का विवरण	१९२२
७	बृहस्पति द्वारा देवताओं का परित्याग और विश्वरूप का देवगुरु के रूप में वरण	१९३२
८	विश्वरूप द्वारा इन्द्र को नारायण कवच का उपदेश	१९४३
९	विश्वरूप का वध देवताओं का वृत्रासुर से पराजित होना, श्रीभगवान् की आज्ञा से देवताओं का दधीचि ऋषि के पास जाना	१९५६
१०	देवताओं द्वारा दधीचि ऋषि की हड्डियों द्वारा वज्र का निर्माण और वृत्रासुर की सेना पर आक्रमण	१९७९
११	वृत्रासुर की वीर वाणी और भगवत्प्राप्ति	१९८९
१२	वृत्रासुर का वध	१९९९
१३	इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण	२००९
१४	वृत्रासुर के पूर्वजन्म का चरित्र	२०१७
१५	चित्रकेतु को अङ्गिरा महर्षि और देवर्षि नारद का उपदेश	२०३४
१६	चित्रकेतु का वैराग्य और उनको भगवान् सङ्कर्षण का दर्शन	२०४२
१७	चित्रकेतु को पार्वतीजी का शाप	२०६७
१८	अदिति और दिति के सन्तानों की तथा मरुद्गणों की उत्पत्ति	२०७९
१९	पुंसवन व्रत की विधि	२०९९

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

सातवाँ स्कन्ध

आठवाँ स्कन्ध

नवाँ स्कन्ध

दसवाँ स्कन्ध (पूर्वार्ध)

दशम स्कन्धः (उत्तरार्धः)

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

ग्यारहवाँ स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	द्वादशस्कन्धः	
१	कलियुग के राज वंशों का वर्णन	४६७१
२	कलियुग के धर्म	४६८२
३	राज्य युगधर्म और कलि के दोषों से बचने के उपाय	४६९५
४	चार प्रकार का प्रलय	४७१०
५	श्रीशुकदेवजी का अन्तिम उपदेश	४७२५
६	परीक्षित् की परमागति तथा जनमेजय द्वारा सर्पक्षत्र	४७३१
७	अथर्वाद की शाखाएँ और पुराणों के लक्षण	४७५६
८	तपस्यारत महर्षि मार्कण्डेय को वरदान की प्राप्ति	४७६५
९	मार्कण्डेय महर्षि को माया का दर्शन	४७८१
१०	महर्षि मार्कण्डेय को भगवान् शिव का वरदान	४७९२
११	श्रीभगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग तथा आयुधों के रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणों का वर्णन	४८०४
१२	श्रीमद्भागवत की संक्षिप्त विषय सूची	४८२०
१३	विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या और श्रीमद्भागवत की महिमा	४८३९
श्लोकानुक्रमणिका		४८४७

।। नमो भगवते वासुदेवाय ।।

।। नमो भगवते पाराशर्याय महर्षये व्यासाय ।।

श्रीमद्भागवतमहापुराण

माहात्म्य

कृष्णं नारायणं वन्दे, कृष्णं वन्दे ब्रजप्रियम् । कृष्णं द्वैपायनं वन्दे, कृष्णं वन्दे पृथासुतम् ॥

पहला अध्याय

देवर्षि नारद की भक्ति से भेंट

सच्चिदानन्द रूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे। तापत्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥१॥

अन्वय— वयं सच्चिदानन्दरूपाय, विश्वोत्पत्त्यादि हेतवे, तापत्रयविनाशाय, श्रीकृष्णाय नुमः ।

अनुवाद— सच्चिदानन्द स्वरूप, सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश के कारणभूत, आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के सन्तापों को विनष्ट करने वाले, भगवान् श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं ।

भावप्रकाशिका

श्रीभगवान् सत् स्वरूप, चित् स्वरूप एवं आनन्द स्वरूप हैं । चूकि श्रीभगवान् ही पारमार्थिक रूप से सत्य हैं; उनसे अतिरिक्त जगत् तो उनमें ही प्रतिभासित हो रहा है । ब्रह्मव्यतिरिक्त वस्तुओं की सत्ता व्यावहारिक है । अतएव परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण को सत् स्वरूप कहा जाता है । वे ज्ञान स्वरूप हैं । **सत्यं ज्ञानमनतं ब्रह्म श्रुति** उनको ज्ञान स्वरूप बतलाती है । परं ब्रह्म को आनन्द स्वरूप बतलाती हुयी श्रुति कहती है **आनन्दो ब्रह्म** ब्रह्म आनन्द स्वरूप हैं । दूसरी श्रुति कहती है, **'रसो वै सः'** अर्थात् परब्रह्म रस स्वरूप है ।

सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति (रक्षा) और संहार को करने वाले परब्रह्म ही है । तैत्तिरीय श्रुति कहती है— **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्ब्रह्म ।'** जिसमे इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, रक्षा और प्रलय होते हैं, प्रलय काल में सम्पूर्ण जगत् जिनमें लीन हो जाता है । वे ही ब्रह्म है, उसे ही जानने की इच्छा करो । संसार के सभी प्राणी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन प्रकार के दु;खों से संतप्त रहते है । परब्रह्म परमात्मा अपने उपासकों के तीनों प्रकार के संतापों को विनष्ट कर देते हैं । ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं ।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥२॥

अन्वयः— प्रव्रजन्तम्, अनुपेतम्, उपेतकृत्यम्, यम् विरहकातरः द्वैपायनः पुत्रेति आजुहाव, तन्मयतया, तरवो (यम्) अभिनेदुः तं सर्वभूतहृदयम्, मुनिम् आनतोऽस्मि ।

अनुवाद— जिनका यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं हुआ था, ऐसे सभी कर्मों का परित्याग करके संसार से विरक्त होने के कारण वन में जाते हुए जिन शुकदेवजी को देखकर विरह की व्यथा से व्याकुल महर्षि व्यास; हाय पुत्र ! कहाँ जा रहे हो ? इस तरह से कहकर पुकारने लगे और उनके तन्मय होने के कारण वृक्षों ने उनकी ओर से उत्तर दिया, सभी भूतों के हृदय स्वरूप, तत्त्वचिन्तन परायण श्रीशुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

भावप्रकाशिका

महर्षि व्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी स्वभावतः ज्ञान प्राप्त थे । वे संसार की असारता को अच्छी तरह से जानते थे । इसीलिए जन्म लेने के पश्चात्, जबकि उनका यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं हुआ था, उन्होंने सम्पूर्ण कर्मों का परित्याग कर दिया और संसार से विरक्त होकर वन में जाने लगे । उनको वन में जाते हुए देखकर महर्षि व्यास हाय पुत्र तुम कहाँ जा रहे हो ? यह कहकर पुकारने लगे । आत्मस्वरूप सम्पूर्ण भूतों में आत्मा रूप से व्यापक शुकदेवजी की ओर से वृक्षों ने ही व्यासजी का उत्तर दिया । इस प्रकार के सभी भूतों की आत्मा रूप श्रीशुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् । कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥३॥

अन्वयः— नैमिषे, महामतिम्, आसीनम्, सूतम्, अभिवाद्य कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकः अब्रवीत् ।

अनुवाद— नैमिषारण्य में, महाज्ञानी तथा बैठे हुए सूतजी को नमस्कार करके, कथा रूपी अमृत का आस्वाद ग्रहण करने में कुशल शौनक महर्षि ने कहा ।

भावप्रकाशिका

सूतजी व्यासजी के शिष्यों में अन्यतम थे । उन्होंने महर्षि बादरायण की ही सन्निधि में सम्पूर्ण इतिहासों और पुराणों का श्रवण किया था । अतएव वे महाज्ञानी थे । एक बार जब वे नैमिष क्षेत्र में बैठे थे, उस समय शौनक महर्षि ने जाकर उनको प्रणाम किया, चूकि वे जानते थे कि सूतजी सभी पौराणिक कथाओं को जानते हैं, श्रीभगवान् की कथाएँ अमृत के समान हैं । भगवत् कथाओं का श्रवण करने वाला पुरुष मुक्ति रूपी परम पुरुषार्थ को प्राप्त कर लेता है । अतएव भगवत् कथा के रस का आस्वाद लेने में कुशल शौनक महर्षि ने सूतजी को नमस्कार करके निम्नाङ्कित बात को कहा ।

शौनक उवाच

अज्ञानध्वान्तविध्वंस कोटिसूर्यसमप्रभ । सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥४॥

अन्वयः— हे अज्ञानध्वांतविध्वंस कोटिसूर्यसमप्रभ, सूत, मम, कर्णरसायनम्, कथासारम् आख्याहि ॥४॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए करोड़ों सूर्यों के समान कान्ति सम्पन्न हे सूतजी! मेरे कानों के लिए रसायन के समान कथाओं के सार भाग को आप मुझे सुनाइये ॥४॥

भक्तिज्ञानविरागाप्तविवेको वर्धते कथम् । मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥५॥

अन्वयः— भक्तिज्ञानविरागाप्तो विवेकः कथम् वर्धते, वैष्णवैः मायामोहनिरासः कथम् क्रियते ॥५॥

अनुवाद— भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से प्राप्त होने वाला विवेक कैसे बढ़ता है ? और भगवद् भक्त किस प्रकार से मायामोह को अपने से दूर करते हैं ?॥५॥

भावप्रकाशिका

सत्य क्या है ? और असत्य क्या है ? इन दोनों में होने वाला भेद पूर्वक ज्ञान ही विवेक कहलाता है। इस विवेक की प्राप्ति भगवद् भक्ति, ज्ञान और संसार की नश्वरता को जानकर उससे होने वाले वैराग्य के द्वारा होती है । उस विवेक की समृद्धि कैसे होती है ? तथा भगवान् के भक्तजन किस प्रकार से सांसारिक माया और मोह का परित्याग कर देते हैं ? क्योंकि मायाजन्य अज्ञान को दूर करना तो बड़ा ही कठिन है । इस तरह से शौनक महर्षि ने दो प्रश्नों को इस श्लोक में किया है ।

इह घोरे कलौ प्राप्ते जीवश्चासुरतां गतः । क्लेशक्लान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥६॥

अन्वयः— इह घोरे कलौ जीवश्च प्रायः असुरतां गतः क्लेशक्लन्तस्य तस्यैव शोधने परायणम् किम् ॥६॥

अनुवाद— किञ्च, इस घोर कलिकाल में जीव प्रायः आसुर स्वभाव का हो गया, उसके कारण वह क्लेशक्लान्त हो गया है । अर्थात् अनेक प्रकार के कष्टों को भोग रहा है । उन क्लेशक्लान्त जीवों के शुद्ध होने का सर्वश्रेष्ठ साधन क्या है ?॥६॥

भावप्रकाशिका

जीव स्वभावतः दैवीसम्पदा से सम्पन्न हैं, किन्तु कलिकाल के प्रभाव के कारण आसुरी सम्पदा सम्पन्न हो गया है । आप ऐसा कोई साधन बतलायें कि जिस साधन को अपनाकर पुनः वह अपने शुद्धस्वरूप में आ जाय और दैवीसम्पदा से सम्पन्न हो जाय । भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवद् गीता के सत्रहवें अध्याय में विस्तार से दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन किया है ॥६॥

श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् । कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥७॥

अन्वयः— यत्श्रेयसां श्रेयः (भवेत्) पावनानां पावनं (भवेत्) तत् कृष्णप्राप्तिकरम् शश्वत् साधनम् अधुना वद॥७॥

अनुवाद— जो कल्याण करने वालों में सर्वाधिक कल्याणकारी हो और पवित्र करने वालों में सर्वाधिक पवित्र करने वाला हो उस भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति कराने वाले शश्वतसाधन को इस समय आप मुझे बतलाइये ॥७॥

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसंपदम् । प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥८॥

अन्वयः— चिन्तामणिः लोकसुखं (प्रयच्छति) सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम् प्रयच्छति, प्रीतो गुरुः योगिदुर्लभम् वैकुण्ठम् प्रयच्छति ॥८॥

अनुवाद— चिन्तामणि केवल लौकिक सुख प्रदान करता है, स्वर्ग में रहने वाला कल्पद्रमु स्वर्ग की सम्पत्ति को प्रदान कर सकता है किन्तु प्रसन्न हुए गुरु तो योगियों के लिए भी दुर्लभ वैकुण्ठधाम प्रदान कर देते हैं ॥८॥

भावप्रकाशिका

संसार में यह प्रख्यात है कि चिन्तामणि एक ऐसी मणि है कि उसके समक्ष मनुष्य कोई भी सांसारिक वस्तु

प्राप्त करना चाहता है, उसे वह मणि अपने आराधक को प्रदान कर देती है। स्वर्गलोक में ही पाया जाने वाला कल्पवृक्ष ऐसा वृक्ष है जिसके नीचे जाकर स्वर्गीय जीव जो कुछ भी कामना करता है उसकी उस कामना को वह पूर्ण कर देता है। स्वर्ग में प्राप्त होने वाली सारी वस्तुओं को वह प्रदान करने में समर्थ है। किन्तु गुरु की महिमा चिन्तामणि और कल्पवृक्ष दोनो से अधिक है। चिन्तामणि अथवा कल्पवृक्ष से वैकुण्ठ की प्राप्ति नहीं हो सकती है, किन्तु शिष्य की सेवा से प्रसन्न होकर गुरु शिष्य को ऐसा ज्ञान प्रदान कर देते हैं कि वह शिष्य वैकुण्ठधाम की भी प्राप्ति कर लेता है। उस वैकुण्ठधाम को प्रयास करके भी योगिजन नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥८॥

सूत उवाच

प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य च। सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥९॥

अन्वयः— शौनक ! ते चित्ते हि प्रीतिः अतः विचार्य सर्वसिद्धान्त निष्पन्नम् संसारभयनाशनम् (साधनम्) वच्मि॥९॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनक महर्षे ! आपके मन में श्रीभगवान् के प्रति प्रेम है; अतएव मैं विचार करके आपको ऐसा साधन बतला रहा हूँ, जो सभी सिद्धान्तो का सार है तथा संसार के भय को विनष्ट करने वाला है ॥९॥

भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णासंतोषहेतुकम्। तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥१०॥

अन्वयः— यत् च, भक्त्योघवर्धनं, कृष्णसंतोषहेतुकम् तत् ते अभिधास्यामि, सावधानतया शृणु ॥१०॥

अनुवाद— जो साधन भक्ति के प्रवाह को बढ़ाने वाला है तथा भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता को उत्पन्न करता है, उसी साधन को मैं आपको बतला रहा हूँ, उसे आप सावधान होकर सुने ॥१०॥

कालव्यालमुखग्राससत्रासनिर्णाशहेतवे। श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम्॥११॥

अन्वयः— कलौ कालव्यालमुखग्राससत्रासनिर्णाशहेतवे, कीरेण श्रीमद्भागवतं शास्त्रं भाषितम् ॥११॥

अनुवाद— कलियुग में काल रूपी सर्प के मुख का ग्रास होने के कारण उत्पन्न भय को; पूर्ण रूप से विनष्ट करने के साधन रूप से श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत शास्त्र का प्रवचन किया है ॥११॥

भावप्रकाशिका

काल को भयङ्कर सर्प के रूप में यहाँ पर रूपकालङ्कार के माध्यम से बतलाया गया है। वह काल रूपी व्याल मनुष्य को निगल जाने का काम करता है। जो मनुष्य इस काल रूपी सर्प का ग्रास बनने के भय से भयभीत है, उसके उस भय का सदा सर्वदा के लिए नाश करने के साधन रूप से शुकदेवजी ने श्रीमद्भावत शास्त्र का प्रवचन किया है। इस श्रीमद्भागवत शास्त्र रूपी साधन को अपनाने वाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करके सदा सर्वदा के लिए काल के भय से मुक्त हो जाता है ॥११॥

एतस्मादपरं किंचिन्मनःशुद्ध्यै न विद्यते। जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥१२॥

अन्वयः— मनः शुद्ध्यै एतस्मादपरम्, किञ्चित् न विद्यते, यदि जन्मान्तरे, पुण्यं भवेत् तदा भागवतं लभेत् ॥१२॥

अनुवाद— मन की शुद्धि के लिए इस श्रीमद्भागवत शास्त्र से भिन्न कोई भी साधन नहीं है। अतएव यदि मनुष्य का पूर्वजन्म का पुण्य होता है तब ही वह मुक्ति की प्राप्ति के साधन रूप से श्रीमद्भागवत शास्त्र को अपनाता है ॥१२॥

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके। सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन्॥१३॥

अन्वयः— परिक्षिते कथां वक्तुं सभायां शुके संस्थिते देवाः सुधाकुम्भं गृहित्वैव तत्र समागमन् ॥१३॥

अनुवाद— जब शुकदेवजी राजा परीक्षित् को श्रीमद्भागवत की कथा सुनाने के लिए सभा में बैठे थे उस समय देवगण अमृत का कलश लेकर उस सभा में आये ॥१३॥

शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः। कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥१४॥

अन्वयः— स्वकार्यकुशालाः सर्वे सुराः शुकं नत्वा अवदन्, इमां सुधां गृहित्वैव कथासुधां प्रयच्छस्व ॥१४॥

अनुवाद— अपना कार्य करने में निपुण सभी देवताओं ने शुकदेवजी को नमस्कार करके कहा आप इस अमृत को लेकर इसके बदले में हमें कथामृत को प्रदान कर दें ॥१४॥

एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम्। प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥१५॥

अन्वयः— एवं विनिमये जाते राज्ञा सुधा प्रपीयताम्, वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् प्रपास्यामः ॥१५॥

अनुवाद— इस तरह से परस्पर में विनिमय हो जाने पर राजा परीक्षित् अमृत का पान कर लें और हमलोग कथा रूपी अमृत का पान करेंगे ॥१५॥

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवाञ्जहास ह ॥१६॥

अन्वयः— तदा लोके सुधा, क्व, कथा क्व ? काचः क्व ? महान् मणिः क्व ? एवं विचार्य देवरातः देवाञ्जहास ॥१६॥

अनुवाद— संसार में कहाँ तो अमृत और कहाँ कथा कहाँ काच और कहाँ अत्यन्त मूल्यवान मणि ? इस तरह से विचार करके श्रीशुकदेवजी देवताओं का उपहास किए ॥१६॥

भावप्रकाशिका

जिस तरह से काच और अत्यन्त मूल्यवान मणि की समता नहीं हो सकती है। मणि की तुलना में काच अत्यन्त तुच्छ पदार्थ है, उसी तरह से अमृत और कथामृत की कोई तुलना नहीं हो सकती है, क्योंकि अमृत का पान करने से तो देवता मनुष्यों की अपेक्षा अधिक दीर्घजीवी हो जाते है, किन्तु देवताओं की भी मृत्यु होती है। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह इन्द्रों की मृत्यु हो जाती है। जब इन्द्र की यह हालत है तो सामान्य देवताओं की कौन सी बात है ? यह श्रीमद्भागवत कथा रूपी सुधा तो ऐसी है कि इससे मनुष्य मुक्ति का पात्र हो जाता है। अतएव दोनों में समानता कभी हो ही नहीं सकती है। किन्तु देवता हमें इस तुच्छ अमृत को देकर और बदले में कथासुधा लेकर मुझे ठगना चाहते हैं, अतएव शुकदेवजी ने देवताओं का उपहास कर दिया ॥१६॥

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम्। श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥१७॥

अन्वयः— सः तान् च अभक्तान् विज्ञाय कथामृतम् न ददौ। श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥१७॥

अनुवाद— वे देवताओं को अभक्त जानकर उन सबों को कथामृत को नहीं दिए, श्रीमद्भागवत की कथा देवताओं के भी लिए दुर्लभ है ॥१७॥

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः।
स च लोके तुलां बद्ध्वाऽतोलयत्साधनान्यजः ॥१८॥

अन्वयः— पुराराज्ञो मोक्षं वीक्ष्य धाताऽपि विस्मितः। अजः सत्यलोके तुलां बद्ध्वा साधनानि तोलयत् ॥१८॥

अनुवाद— प्राचीन काल में श्रीमद्भागवत के श्रवण मात्र से राजा के मोक्ष को देखकर ब्रह्माजी भी आश्चर्य चकित हो गये । उन्होंने सत्यलोक में तराजू बाँधकर साधनों को तौला ।।१८।।

लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत्। तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः।।१९।।

अन्वयः— अन्यानि (साधनानि) लघूनि जातानि इदं गौरवेण महत् तदा सर्वे ऋषिगणाः परमं विस्मयं ययुः ।।१९।।

अनुवाद— उस समय दूसरे सभी साधन हल्के हो गये और यह श्रीमद्भागवत उन सबों से अत्यधिक भारी निकला, इसको देखकर सभी ऋषिगण अत्यन्त आश्चर्यित हो गये ।।१९।।

मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं क्षितौ । पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुण्ठफलदायकम्।।२०।।

अन्वयः— कलौ भागवतं शास्त्रं पठनात् श्रवणात् सद्यः वैकुण्ठफलदायकम् भगवद्रूपं मेनिरे ।।२०।।

अनुवाद— वे लोग कलियुग में पढ़ने तथा सुनने से शीघ्र ही मुक्ति रूपी फल को प्रदान करने वाले भागवत शास्त्र को भगवत् स्वरूप माने ।।२०।।

सप्ताहश्रवणेनैव सर्वथा मुक्तिदायकम् । सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ।।२१।।

अन्वयः— पुरा दयापरैः सनकाद्यैः नारदाय पुरा प्रोक्तम् । सप्ताहेन च श्रुतम् एतत् सर्वथा मुक्तिदायकम् ।।२१।।

अनुवाद— प्राचीन काल में दया करने वाले सनकादिक ऋषियों ने इसको देवर्षि नारदजी को प्रदान किया था । सप्ताह की विधि से श्रवण करने पर यह निश्चित रूप से मुक्ति रूपी फल प्रदान करता है ।।२१।।

यद्यपि ब्रह्मसंबन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा । सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ।।२२।।

अन्वयः— सुरर्षिणा यद्यपि एतत् ब्रह्म संबन्धात् श्रुतम् । तस्य सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैः भाषितः ।।२२।।

अनुवाद— यद्यपि श्रीमद्भागवत को नारदजी ने ब्रह्माजी के मुख से ही सुन लिया था किन्तु इसको एक सप्ताह में सुनने की विधि को सनकादिक महर्षियों ने ही बतलाया ।।२२।।

शौनक उवाच

लोकविग्रहमुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च । विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ।।२३।।

अन्वयः— लोकविग्रहमुक्तस्य अस्थिरस्य नारदस्य, विधिश्रवे कुतः प्रीतिः कुत्र (च) तैः सह संयोगः ?।।२३।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— सांसारिक प्रपञ्च से रहित तथा अस्थिर (कहीं एक जगह नहीं रहने वाले) नारदजी की कथा की विधि विधान सुनने में प्रेम कैसे हुआ ? तथा उनकी सनकादिक महर्षियों से भेंट कहाँ हुयी ।।२३।।

सूत उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम्। शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ।।२४।।

अन्वयः— अत्र (अहम्) ते भक्तियुक्तं कथानकं कीर्तयिष्यामि यत् शुकेन रहः शिष्यं वियार्य मम प्रोक्तम् ।।२४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस विषय में मैं आपको एक भक्तिमय कथानक सुनाता हूँ, जिसको शुकदेव महर्षि ने मुझको ऐकान्तिक शिष्य सोचकर सुनाया था ।।२४।।

एकदा तु विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः । सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ।।२५।।

अन्वयः— एकदा हि सत्सङ्गार्थं चत्वारः अमलाः ऋषयः विशालायां समायाताः तत्र (ते) नारदं ददृशुः ।।२५।।

अनुवाद— एक बार सत्सङ्ग करने के लिए वे (सनकादिक) चारो निर्मल ऋषि विशाला नगरी में आये । वहाँ पर उन लोगों ने नारदजी को देखा ।।२५।।

कुमारा ऊचुः

कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तापरो भवान्। त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ।।२६।।

अन्वयः— ब्रह्मन् दीनमुखः कथम् ? भवान् चिन्तातुरः कुतः ? कुत्र त्वरितं गम्यते ? तव आगमनम् कुतः ।।२६।।

कुमारों ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आपका मुख उदास क्यों हैं ? आप चिन्ता से व्याकुल क्यों हैं ? आप शीघ्रता पूर्वक कहाँ जा रहे हैं ? और आप कहाँ से आ रहे हैं ?।।२६।।

इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः । तवेदं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ।।२७।।

अन्वयः— इदानीम् गतवित्तो जनो यथा शून्यचित्तोऽसि, मुक्तसङ्गस्य तव इदं उचितं न (अस्य) कारणं वद ।।२०।।

अनुवाद— इस समय आप उस पुरुष के समान उदास प्रतीत हो रहे हैं, जिसका सारा धन लुट गया हो । सांसारासक्ति से रहित आपके लिए यह उचित नहीं है, इसका (उदासी का) कारण आप बतलाइये ।।२७।।

नारद उवाच

अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति। पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ।।२८।।
हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धनम्। एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ।।२९।।
नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनः संतोषकारकम्। कलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताधुना ।।३०।।

अन्वयः— अहं तु सर्वोत्तमाम् इति ज्ञात्वा पृथिवीं यातः, पुष्करं च, प्रयागं च, काशीं, गोदावरीम् तथा हरिक्षेत्रम्, कुरुक्षेत्रम्, श्रीरङ्गम्, सेतुबन्धनम् एवम् आदिषु तीर्थेषु इतस्ततः भ्रममाणः कुत्रचित् च मनः सन्तोष कारकं शर्म न अपश्यम्। अधुना, अधर्ममित्रेण कलिना इयं धरा बाधिता ।।२८-३०।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— मैं तो सर्वोत्तमलोक समझकर भूलोक में गया था । और, पुष्करतीर्थ, प्रयागतीर्थ, काशी, गोदावरी (नासिक) तीर्थ, हरिक्षेत्र (हरिद्वार), कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्गम्, सेतुबन्ध इत्यादि तीर्थों में इधर-उधर घूमते हुए कहीं पर भी मन को प्रसन्न करने वाले कल्याण को नहीं देखा । इस समय यह पृथिवी अधर्म के मित्र कलि के द्वारा बाधित (पीड़ित) है ।।२८-३०।।

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते। उदरंभरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ।।३१।।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः। पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ।।३२।।
तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः। कन्याया विक्रयो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ।।३३।।
आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा। देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ।।३४।।

अन्वयः— अत्र सत्यं नास्ति, तपः शौचं, दया, दानं च न विद्यते, वराकाः कूटभाषिणः उदरम्भरिणः, मन्दाः सुमन्दमतयः, मन्दभाग्याः, जीवाः हि उपद्रुताः, विरक्ताः सन्तः पाखण्डनिरताः, सपरिग्रहाः, (सन्ति) गेहे तरुणीप्रभुता, श्यालकः बुद्धिदायकः, (जनाः लोभात्) कन्या विक्रयिणः दम्पतीनां कल्कनं, आश्रमाः यवनैः रुद्धाः, तीथानि, सरितः तथा देवतायतनानि, दुष्टैः भूरिशः नष्टानि ।।३१-३४।।

अनुवाद— यहाँ पर सत्य, तप, शौच, दया, दान ये सब कुछ भी नहीं है । बेचारे झूठ बोलने वाले लोग अपना

पेट भरने में ही लगे रहने वाले, आलसी, मन्दबुद्धि, भाग्यहीन, जीव, उपद्रव ग्रस्त हो गये हैं । संसार से विरक्त रहने वाले साधु सन्त पाखण्डी हो गये हैं और अनेक प्रकार के दानों को ग्रहण करते हैं । गृहस्थों के घर में युवतियों का ही राज्य है और साले ही सलाह देने वाले हो गये हैं । लोग लोभ के कारण कन्याओं को बेंचने का काम करते हैं और पति-पत्नी में कलह होता है । महात्माओं के आश्रमों पर, तीर्थों तथा नदियों पर यवनों का अधिकार हो गया है और दुष्टों ने बहुत अधिक देव मन्दिरों को विनष्ट कर दिया है ।।३१-३४।।

न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः । कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ।।३५।।

अन्वयः— अद्य न योगी नैव सिद्धः, न सत्क्रियः, ज्ञानी नरः न, कलिदावानलेन साधनम्, भस्मतां गतम् ।।३५।।

अनुवाद- इस समय पृथिवी पर न तो कोई योगी है, न सिद्ध है और न तो कोई सत्कर्मों को करने वाला है, कलियुग रूपी दावानल ने सभी (आत्म कल्याण के) साधनों को विनष्ट कर दिया है ।।३५।।

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः । कामिन्यः केशशूलिन्यः संभवन्ति कलाविह ।।३६।।

अन्वयः— इह कलौ जनपदाः अट्टशूलाः, द्विजातयः शिवशूलाः, कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति ।।३६।।

अनुवाद— इस समय कलियुग में जनपद के लोग अन्न को बेंचने लगे है, ब्राह्मण पैसा लेकर वेद पढ़ाते हैं, स्त्रियाँ वेश्या वृत्ति से अपना काम चलाती हैं ।।३६।।

भावप्रकाशिका— इस श्लोक में अट्ट, शिव, केश और शूल इन चार शब्दों का भिन्नार्थक प्रयोग है । अट्ट शब्द अट्टालिका और अन्न दोनों का बोधक है, उसी तरह शिव शब्द शिवजी तथा वेद दोनों का बोधक है । केश शब्द भी केश और स्त्रियों की योनि दोनों का बोधक है तथा शूल शब्द भी त्रिशूल और बेचने की क्रिया दोनों का बोधक है । किन्तु इनमें अट्टालिका, शिवजी, बाल तथा त्रिशूल ये प्रसिद्ध अर्थ हैं और अन्न, वेद, स्त्री की योनि तथा बेचना रूप अर्थ अप्रसिद्ध हैं। इस श्लोक में इन शब्दों का अप्रसिद्ध अर्थ में ही प्रयोग किया गया है ।।३६।।

एवं पश्यन्कलेर्दोषान्पर्यटन्नवनीमहम् । यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ।।३७।।

अन्वयः— एवं कलेः दोषान् पश्यन् अवनीम् पर्यटन् अहम् यामुनं तटम् आपन्नः, यत्र हरेः लीला अभूत् ।।३७।।

अनुवाद- इस तरह से कलि के दोषों को देखते हुए और पृथिवी पर भ्रमण करते हुए मैं यमुना के तट पर आया जहाँ पर श्रीहरि की लीला हो चुकी है ।।३७।।

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः । एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ।।३८।।

अन्वयः— हे मुनीश्वरों ! तत्र मया आश्चर्यं दृष्टम् तत् श्रूयताम् । तत्र तु एका तरुणी खिन्नमानसा निषण्णा ।।३८।।

अनुवाद— हे मुनीश्वरों ! वहाँ पर मैं जो आश्चर्य की बात देखा उसे आपलोग सुनें । वहाँ पर एक दुःखी मन वाली नारी बैठी थी ।।३८।।

द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ । शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ।।३९।।

अन्वयः— (तस्याः) पार्श्वे द्वौ, अचेतनौ, निःश्वसन्तौ वृद्धौ पतितौ (सा) शुश्रूषन्ती, प्रबोधन्ती, तयोः पुरः च रुदती ।।३९।।

अनुवाद— उसके सन्निकट में दो बेहोश तथा श्वास लेते हुए वृद्ध गिरे हुए थे । वह युवती उन दोनों की सेवा कर रही थी, उन दोनों को जगाती थी तथा उन दोनों के सामने रोने लगती थी ।।३९।।

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः । वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ।।४०।।

अन्वयः— (सा) निजं वपुः रक्षितारम् दशदिक्षु निरीक्षन्ती, शतस्त्रीभिः, वीज्यमाना मुहुर्मुहुः बोध्यमाना आसीत् ।।४०।।

अनुवाद— वह अपने शरीर के रक्षक श्रीभगवान् को दशो दिशाओं में देख रही थी। सैकड़ों स्त्रियाँ उसको पङ्खा झल रही थीं और उसको बार-बार समझा रही थीं ॥४०॥

दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम्। मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥४१॥

अन्वयः— सोऽहम् दूराद् दृष्ट्वा कौतुकेन तदन्तिकम् गतः। मां दृष्ट्वा च बाला उत्थिता विह्वला च वचः अब्रवीत्॥४१॥

अनुवाद— उन सबों को दूर से ही देखकर कौतुक (उत्कण्ठा) वशात् मैं सन्निकट में गया और वह बाला (युवती नारी) भी मुझको देखकर खड़ी हो गयी और अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक कहने लगी ॥४१॥

बालोवाच

भो भो साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय। दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाऽघहरं परम् ॥४२॥

अन्वयः— भो भो साधो, क्षणं तिष्ठ मत् अपि चिन्तां नाशय तव दर्शनं सर्वथा लोकस्य परम् अघहरम् ॥४२॥

युवती ने कहा

अनुवाद— हे महात्मन् ! आप क्षण भर रुक जाइये, मेरी भी चिन्ता दूर कीजिये। आपका दर्शन तो संसार के सभी पापों को पूर्ण रूप से विनष्ट कर देने वाला है ॥४२॥

बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्भविष्यति। यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥४३॥

अन्वयः— तव वाक्येन, बहुधा दुःखशान्तिः भविष्यति। यदा भूरि भाग्यं भवेत् तदा भवतः दर्शनम् जयते ॥४३॥

अनुवाद— आपके वचनों से मेरे दुःख की बहुत अधिक शान्ति हो जायेगी, जब मनुष्य का बहुत बड़ा भाग्य होता है, तब ही आपका दर्शन मिलता है ॥४३॥

नारद उवाच

काऽसि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः।
वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥४४॥

अन्वयः— त्वम् का असि ? इमौ कौ ? इमाः पद्मलोचनाः नार्यः काः ? देवि ! स्वस्य दुःखस्य कारणम् सविस्तारं वद ॥४४॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् मैंने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? ये दोनों कौन हैं ? और ये कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली नारियाँ कौन हैं ? हे देवि ! तुम अपने दुःख के कारण को विस्तार से बतलाओ ॥४४॥

बालोवाच

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ। ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥४५॥
गङ्गाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः। तथापि न च मे श्रेयः सेविताया: सुरैरपि ॥४६॥

अन्वयः— अहम् भक्तिः इति ख्याता, इमौ कालयोगेन जर्जरौ ज्ञानवैराग्यनामानौ मे तनयौ इमाः च गङ्गाद्या नद्यः, मत् सेवार्थम् समागताः तथापि च सुरैरपि सेविताया: मे श्रेयः न ॥४५-४६॥

युवती ने कहा

अनुवाद— मैं भक्ति के नाम से विख्यात हूँ। ये दोनों समय के विपरीत होने के कारण जर्जर हुए मेरे

ज्ञान और वैराग्य नामक पुत्र हैं और ये गङ्गा आदि नदियाँ है और मेरी सेवा करने के लिए आयी हुयी हैं फिर भी देवताओं के द्वारा सेवित होने पर भी मुझे सुख-शान्ति नहीं मिल पा रही है ।।४५-४६।।

इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोधन । वार्ता मे वितताप्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ।।४७।।

अन्वयः— तपोधन ! सच्चित्त त्वं इदानीं मद वार्तां शृणु। मम वार्ता वितता अपि अस्ति। तां श्रुत्वा सुखम् आवह।।४७।।

अनुवाद— हे तपोधन ! आप सावधानीं पूर्वक मेरा वृत्तान्त सुनें । मेरा वृत्तान्त विस्तृत भी है उसको सुनकर आप मुझे सुख प्रदान करें ।।४७।।

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता । क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ।।४८।।

अन्वयः— साहं द्रविडे उत्पन्ना, कर्णाटके वृद्धिं गता, क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ।।४८।।

अनुवाद— मैं द्रविड देश में उत्पन्न हुयी, कर्णाटक प्रदेश में सम्मानित हुयी और कहीं-कहीं महाराष्ट्र में भी सम्मानित हुयी । मैं गुजरात में जाकर बूढ़ी हो गयी ।।४८।।

तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका ।
दुर्बलाऽहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ।।४९।।
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताऽहं युवती सम्यक् प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ।।५०।।

अन्वयः— तत्र घोरकलेः योगात् खण्डिताङ्गका चिरं दुर्बला अहम् पुत्राभ्याम् सह मन्दताम् याता पुनः वृन्दावनं प्राप्य साम्प्रतम् नवीना सुरूपिणी इव सम्यक् प्रेष्ठरूपा युवती अहं जाता ।।४९-५०।।

अनुवाद— वहाँ पर घोर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियों ने मेरा अङ्ग भङ्ग कर दिया । दीर्घकाल तक अपने पुत्रों के साथ दुर्बल बनी हुयी मैं मन्द हो गयी । पुनः वृन्दावन में आकर मैं इस समय नवीन सुरूपिणी के समान अच्छी तरह से कमनीय रूप वाली युवती हो गयी हूँ ।।४९-५०।।

इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् । इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया।।५१।।

अन्वयः— इमौ तु पुत्रौ अत्र श्रमात् क्लिश्यतः शयितौ, इदं स्थानं परित्यज्य मया विदेशं गम्यते ।।५१।।

अनुवाद— किन्तु ये दोनों मेरे पुत्र यहाँ पर श्रम के कारण दुःखी होकर सो रहे हैं, मैं इस स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाना चाहती हूँ ।।५१।।

जरठत्वं समायातो तेन दुःखेन दुःखिता । साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ।।५२।।

अन्वयः— (इमौ) जरठत्वं समायातौ, तेन दुःखेन दुखिता । साऽहं तरुणी कस्मात् इमौ सुतौ वृद्धौ कुतः ।।५२।।

अनुवाद— ये दोनों मेरे पुत्र बूढे हो गये हैं, इसी दुःख से मैं दुःखी हूँ । मैं तरुणी क्यों हो गयी हूँ ? और ये दोनों बूढ़े क्यों हो गये हैं ?।।५२।।

त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् । घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ।।५३।।

अन्वयः— त्रयाणां सहचारित्वात् वैपरीत्यं कुतः स्थितम् । माता जरठा तनयौ तरुणौ इति घटते ।।५३।।

अनुवाद— हम तीनों एक साथ रहने वाले हैं, फिर भी इस प्रकार की विपरीतता कैसे आ गयी ? माता को वूढी होना चाहिए और पुत्रों को युवक होना ही उचित होता है ।।५३।।

अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा । वद योगनिधे धीमन् कारणं चात्र किं भवेत् ॥५४॥

अन्वयः— अतः विस्मयाविष्ट मानसा (अहं) शोचामि हे योगनिधेः ! श्रीमन् ! अत्र कारणं किं भवेत् (इति) वद ॥५४॥

अनुवाद— अतएव मैं आश्चर्य चकित मन से अपनी अवस्था के विषय में सोचती रहती हूँ । हे योगनिधे! हे श्रीमन् ! इसका कारण क्या हो सकता है ? इसे आप बतलाइये ॥५४॥

नारद उवाच

ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे । न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥५५॥

अन्वयः— अनघे ! एतत सर्वं ते ज्ञानेन आत्मनि पश्यामि त्वया विषादः नहि कार्यः हरिःते शमं करिष्यति ॥५५॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे निष्पाप देवि ! अपने हृदय में ज्ञानदृष्टि के द्वारा तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख के कारण का विचार कर रहा हूँ तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिए । श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥५५॥

सूत उवाच

क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मनीश्वरः ॥५६॥

अन्वयः— मुनीश्वरः, क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यम् ऊचे ॥५६॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी क्षणभर में उन सारी बातों को जानकर कहे ॥५६॥

नारद उवाच

शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दरुणः कलिः ।
तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥
जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ॥५७॥
इह संतो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः।
धत्ते धैर्यं तु यो धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा ॥५८॥

अन्वयः— बाले ! अवहिता, शृणुष्व, अयं कलियुगः दारुणः तेन सदाचार, योगमार्गः तपांसि च लुप्तः । शाठ्यदुष्कर्म कारिणः जनाः अधासुरायन्ते । इह सन्तः विषीदन्ति, असाधवः प्रहृष्यन्ति, यो धीमन्, धैर्यं धत्ते सः धीरः अथवा पण्डितः ॥५७-५८॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे देवि ! आप सावधान होकर सुनें । यह भयङ्कर कलियुग है । इस समय सदाचार, योगमार्ग तथा तप ये सबके सब लुप्त हो गये हैं । इस समय शाठ्य कर्म करने वाले तथा दुष्कर्म करने वाले अधासुर बन गये है । इस समय सज्जन पुरुष कष्ट का अनुभव करते हैं ओर असज्जन सुखी हैं । इस कलिकाल में जो धैर्य धारण करता है वही ज्ञानी अथवा पण्डित है ॥५७-५८॥

अस्पृश्यानवलोक्येयं शेषभारकरी धरा । वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मङ्गलं नापि दृश्यते ॥५९॥

अन्वयः— शेषभारकरी इयं धरा, क्रमात्, वर्षे, वर्षे अस्पृश्या, अनवलोक्या, जाता, मङ्गलम् अपि न दृश्यते ॥५९॥

अनुवाद— यह पृथिवी प्रत्येक वर्ष क्रमशः न तो स्पर्श करने के योग्य होती जा रही और न देखने के लायक रह गयी है, कहीं मङ्गल भी नहीं दिखायी देता है ॥५९॥

न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति साम्प्रतम् । उपेक्षिताऽनुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥६०॥

अन्वयः— साम्प्रतम्, सुतैः साकं त्वामपि कोऽपि नहि पश्यति । अनुरागान्धैः उपेक्षिता जर्जरत्वेन संस्थिता असि॥६०॥

अनुवाद— विषयों के प्रति अनुराग होने के कारण अज्ञानी बने हुए मनुष्यों के द्वारा उपेक्षित होकर तुम भी अपने पुत्रों के साथ जर्जर हो गयी हो ॥६०॥

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा । धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥६१॥

अन्वयः— वृन्दावनस्य संयोगात् त्वम् पुनः नवा तरुणी (संजाता) तेन वृन्दावनं धन्यं यत्र भक्तिः नृत्यति ॥६१॥

अनुवाद— वृन्दावन का संयोग पाकर तुम पुनः नवीन युवती हो गयी अतएव यह वृन्दावन धन्य है, जहाँ पर भक्ति नृत्य करती हैं ॥६१॥

अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः । किंचिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥६२॥

अन्वयः— अत्र ग्राहकाभावात् इमौ जरामपि न मुञ्चतः । इह, किञ्चित् आत्मसुखेन अनयोः प्रसुप्तिः मन्यते ॥६२॥

अनुवाद— यहाँ तुम्हारे इन दोनों पुत्रों का कोई भी ग्राहक नहीं है अतएव ये दोनों अपनी बुढ़ापे का परित्याग नहीं कर रहे हैं । यहाँ पर कुछ आत्मसुख मिलने के कारण ये दोनों सोते हुए के समान प्रतीत होते हैं ॥६२॥

श्रीभक्तिरुवाच

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ।
प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥६३॥
करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ।
इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥६४॥

अन्वयः— परीक्षिता राज्ञा अशुचिः कलिः कथं स्थापितः, कलौ प्रवृत्ते सर्वः महान् सारः कुत्र गतः ? करुणापरेण हरिणापि अधर्मः कथम् इक्ष्यते, मे इमं संशयं छिन्धि, त्वद् वाचा अहं सुखिता अस्मि ॥६३-६४॥

भक्ति ने कहा

अनुवाद— राजा परीक्षित् ने इस अपवित्र कलियुग को अपने राज्य में क्यों रहने दिया ? कलियुग के आते ही सभी वस्तुओं का महान सार कहाँ चला गया ? करुणा करने वाले श्रीहरि भी इस अधर्म को कैसे देखते हैं ? हे मुने! आप मेरे इस सन्देह को दूर करें । आपकी वाणी को सुनकर मुझे सुख शान्ति की प्राप्ति हो रही हैं ॥६३-६४॥

नारद उवाच

यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु । सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥६५॥

अन्वयः— बाले यदि त्वया पृष्टः (तदा) प्रेमतः श्रवणं कुरु । भद्रे ते सर्वम वक्ष्यामि, ते कश्मलंम् गमिष्यति ॥६५॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— बाले ! यदि तुमने पूछा है तो प्रेम पूर्वक सुनो मैं तुम्हें सारी बातों को बतलाऊँगा और तुम्हारा कष्ट दूर हो जायेगा ।।६५।।

यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ।
तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ।।६६।।
दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः । न मया मारणीयोऽयं सारङ्ग इव सारभुक्।।६७।।

अन्वयः— यदा भगवान् मुकुन्दः क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः तद् दिनात् सर्वसाधनबाधकः कलिरायातः दिग्विजये राज्ञा दृष्टः (सन्) दीनवत् शरणं गतः । सारङ्ग इव सारभुक् (राज्ञा निश्चितम्) मया अयं न मारणीयः ।।६६-६७।।

अनुवाद— जब भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले श्रीभगवान् पृथिवी का परित्याग करके अपने धाम में चले गये उसी दिन से सभी साधनों को बाधित करने वाला कलि पृथिवी पर आ गया । दिग्विजय करते समय राजा परीक्षित् ने जब कलि को देखा तो वह दीन के समान राजा के शरण में चला गया । यह देखकर राजा ने निश्चय किया कि मुझे इसको नहीं मारना चाहिए क्योंकि वे राजा भ्रमर के समान सारग्राही थे । वे जानते थे कि शरणागत की रक्षा करना सबसे बड़ा धर्म है ।।६६-६७।।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ।।६८।।
एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ।
विष्णुरातः स्थापितवान्कलिजानां सुखाय च ।।६९।।

अन्वयः— यत् फलं तपसा नास्ति, न योगेन, न समाधिना, तत्फलं कलौ सम्यक् केशव कीर्तनात् लभते सारनीरसम् एकाकरम् सारवत् दृष्ट्वा विष्णुरातः कलिजानां सुखाय कलिं स्थापितवान् ।।६८-६९।।

अनुवाद— जिस फल की प्राप्ति तपस्या, योग और समाधि से नहीं हो पाती है उस फल को मनुष्य कलियुग में अच्छी तरह से भगवान् केशव का कीर्तन करके प्राप्त कर लेता है । इस तरह सारहीन होने पर भी कलि को एक ही दृष्टि से सारयुक्त देखकर राजा ने कलियुग के मनुष्यों को सुख देने के लिए कलि को स्थापित कर दिया ।।६८-६९।।

कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ।
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ।।७०।।

अन्वयः— अधुना कुकर्माचरणात् सारः सर्वतो निर्गतः भूमौ पदार्था बीजहीनाः तुषा यथा संस्थिताः ।।७०।।

अनुवाद— इस समय सभी लोगों के द्वारा कुकर्म किए जाने के कारण सभी पदार्थों का सार निकल गया है। पृथिवी पर सभी पदार्थ बीज रहित भूस्सी के समान पड़े हुए हैं ।।७०।।

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने । कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ।।७१।।

अन्वयः— विप्रैः कणलोभेन गेहे गेहे, जने-जने भागवती वार्ता कारिता ततः कथासारः गतः ।।७१।।

अनुवाद— ब्राह्मण अन्न तथा धन प्राप्ति के लोभ से प्रत्येक गृहों में तथा प्रत्येक लोगों को श्रीमद्भागवत की कथा को सुनाते हैं, इस कारण कथा का सारभाग निकल गया ।।७१।।

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः । तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥७२॥

कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपः सारस्ततो गतः ॥७३॥
मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ।
शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥७४॥

अन्वयः— तीर्थेषु अत्युग्रभूरिकर्माणः नास्तिका, नारकाः जनाः तिष्ठन्ति ततः तीर्थसारः गतः काम-क्रोध-महालोभ-तृष्णाव्याकुल चेतसः तेऽपि तपसि तिष्ठन्ति ततः तपः सारः गतः । मनसः च अजयात्, लोमात्, दम्भात्, पाखण्ड संश्रयात् शास्त्रानभ्यवेसनात् चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥७२-७४॥

अनुवाद— तीर्थों में अत्यन्त उग्र अनेक प्रकार के कर्म करने वाले, नास्तिक और नारकी भी जीव रहते हैं उसके कारण तीर्थों का सार चला गया । जिनका चित्त काम, क्रोध, महालोभ और तृष्णा से व्याकुल रहता है वे भी तपस्या का ढोंग करते हैं उसके कारण तपस्या का सार चला गया । मन को अपने वश में नहीं रख पाने के कारण एवं लोभ तथा दम्भ को अपनाने एवं पाखण्ड को अपनाने के कारण तथा शास्त्र का अभ्यास नहीं करने के कारण ध्यान योग का फल चला गया ॥७२-७४॥

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव । पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥७५॥
नहि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरःसरा। एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥७६॥

अन्वयः— पण्डितास्तु कलत्रेण महिषा इव रमन्ते । पुत्रस्य उत्पादने दक्षाः मुक्तिसाधने अदक्षाः । सम्प्रदाय पुरस्सरा वैष्णवता कुत्रापि नहि, एवं स्थले-स्थले वस्तुसारः प्रलयतां प्राप्तः ॥७५-७६॥

अनुवाद— पण्डित जन अपनी पत्नियों के साथ पशुओं की तरह रमण करते हैं, वे पुत्रों को उत्पन्न करने में निपुण हैं मुक्ति के साधन में वे पूर्ण रूप से अकुशल है । सम्प्रदायानुसार आने वाली वैष्णवता कहीं भी नहीं है, इस तरह से सभी वस्तुओं का सार विनष्ट हो गया है ॥७५-७६॥

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् । अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः॥७७॥

अन्वयः— अयं तु युगधर्मः वर्तते, कस्य दूषणम् अतः निकटे स्थितः पुण्डरीकाक्षः सहते ॥७७॥

अनुवाद— यह कलियुग का स्वभाव है, इसमें किसी का दोष नहीं है, इसीलिए सन्निकट में विद्यमान रहकर भी भगवान् पुण्डरीकाक्ष यह सब सह रहे हैं ॥७७॥

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता । भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥७८॥

अन्वयः— इति तद्वचनं श्रुत्वा परमं विस्मयं गता भक्तिः भूयः वचः ऊचे हे शौनक तच्च श्रूयताम् ॥७८॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— नारदजी की उस वाणी को सुनकर भक्ति को अत्यन्त आश्चर्य हुआ उसके पश्चात् उसने जो कहा हे शौनकजी उसे आप सुनिये ॥७८॥

श्रीभक्तिरुवाच

सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः । साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥७९॥

जयति जयति माया यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।

ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥८०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— हे सुरर्षे ! त्वं हि धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः लोके साधूनां दर्शनं परमं सर्वसिद्धिकरम् । यस्यते केवलं येन एकं वचनरचनम् आकलय्य, कायाधवः जगति मायां जयति, यत् कृपातः अयम् ध्रुवपदमपि यातः (तम्) सकल कुशल पात्रम् ब्रह्मपुत्रं नता अस्मि ॥७९-८०॥

भक्ति ने कहा

अनुवाद— हे देवर्षे ! आप धन्य है, मेरे परम सौभाग्य के कारण आप आये हुए हैं ।साधु पुरुषों का दर्शन सभी सिद्धियों का परम कारण है । जिस आपके एक ही उपदेश को धारण करके कयाधू के पुत्र प्रह्लाद संसार में माया पर विजय प्राप्त कर लिए । ध्रुव ने भी आपकी ही कृपा से ध्रुव पद को प्राप्त किया था, आप सर्व मङ्गलमय और ब्रह्माजी के पुत्र हैं मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥७९-८०॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के उत्तरखण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में नारदभक्तिसंवाद नामक प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

दूसरा अध्याय

भक्ति का दुःख दूर करने के लिए नारदजी का प्रयास

नारद उवाच

वृथा खेदायसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् । श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥१॥

द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् । पालिता गोपसुन्दर्यःस कृष्णः क्वापि नो गतः ॥२॥

अन्वयः— हे देवि ! वृथा खेदयसे अहो चिन्तातुरा कथम् ? श्रीकृष्णचरणाम्बुजं स्मर, दुःखं गमियति । येन, च कौरवकश्मलात् द्रौपदी परित्राता, गोपसुन्दर्यः पालिताः, सः कृष्णः क्वापि नो गतः ॥१-२॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे देवि ! आप व्यर्थ ही कष्ट का अनुभ कर रही हैं, भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का स्मरण करो, उनकी कृपा से दु;ख दूर हो जायेगा । जिन्होंने कौरवों के अत्याचार से द्रौपदी की रक्षा की थी तथा गोपियों को सनाथित किया था वे भगवान् श्रीकृष्ण कहीं नहीं गये हैं ॥१-२॥

त्वं तु भक्ते प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ।

त्वयाहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥३॥

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ । कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥४॥

अन्वयः— त्वम् तु भक्तिः सततं तस्य प्राणत; अधिका प्रिया त्वया आहूतस्तु भगवान् नीचगृहेषु अपि याति सत्यादियुगे बोध वैराग्यौ मुक्तिसाधकौ, कलौ केवला भक्तिः ब्रह्म सायुज्य कारिणी ।।३-४।।

अनुवाद— तुम तो भक्ति हो, सदा श्रीभगवान् को प्राणों से भी अधिक प्यारी हो, तुम्हारे द्वारा बुलाये जाने पर तो भगवान् नीचों के भी गृहों में चले जाते हैं । सत्ययुग, त्रेतायुग एवं द्वापर युग इन तीन युगों में तो ज्ञान और वैरागय ये दोनों मुक्ति के साधन थे, किन्तु कलियुग में तो केवल भक्ति ही मुक्ति को प्रदान करने वाली है ।।३-४।।

इति निश्चित्य चिद्रूपः सरूपां त्वां ससर्ज ह । परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ।।५।।

अन्वयः— इति निश्चित्य ह परमानन्दचिन्मूर्तिः चिद्रूपः सद्रूपां कृष्णबल्लभाम् सुन्दरीं त्वां ससर्ज ।।५।।

अनुवाद— इस तरह से निश्चय करके ही परमानन्द चिन्मूर्ति ज्ञान स्वरूप श्रीहरि ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा, सुन्दर रूप वाली तुम सुन्दरी की रचना की ।।५।।

बद्ध्वाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा । त्वां तदाज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ।।६।।
अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा । मुक्तिं दासी ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ।।७।।

अन्वयः— एकदा त्वया अञ्जलिं बद्धवा, पृष्टम् किं करोमीति तदा त्वाम् मद्भक्तान् पोषय इति कृष्णः ज्ञापयत् । त्वया वै तद्वै अङ्गीकृतम् तदा हरिः प्रसन्नः अभूत् तुम्यम् मुक्तिं दासी इमौ ज्ञानवैराग्यकौ (च ददौ) ।।६-७।।

अनुवाद— एक बार तुमने हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से पूछा कि मैं क्या करू ? उस समय भगवान् ने तुम्हें आज्ञा प्रदान की कि तुम मेरे भक्तों का पालन पोषण करो । तुमने भगवान् की उस आज्ञा को स्वीकार कर लिया, उससे श्रीहरि तुम पर प्रसन्न हो गये । उन्होंने तुमको मुक्ति को दासी के रूप में और इन ज्ञान और वैरागय को पुत्र के रूप में प्रदान किया ।।६-७।।

पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च । भूमौ भक्तविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ।।८।।

अन्वयः— त्वम् वैकुण्ठे स्वेन रूपेण पोषणं करोषि भूमौ च भक्तविपोषाय त्वया छाया रूपं कृतम् ।।८।।

अनुवाद— वैकुण्ठ में तुम साक्षात् अपने रूप से भक्तों का पोषण करती हो, और भूलोक में तो तुम भक्तों का पोषण करने के लिए, छाया रूप बना रखी हो ।।८।।

मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ।
कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ।।९।।
कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ।त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा।।१०।।

अन्वयः— मुक्तिं ज्ञानं विरागं च सह कृत्वा भुवि गता (सती) कृतादिद्वापरस्य अन्तं महानन्देन संस्थिता कलौ पाखण्डामय पीडिता मुक्तिः क्षयं प्राप्ता, त्वदाज्ञया सा पुनः एव शीघ्रं वैकुण्ठं गता ।।९-१०।।

अनुवाद— तुम मुक्ति, ज्ञान और वैराग्य इन तीनों को साथ लेकर भूलोक में आयी और सत्य युग से लेकर द्वापर पर्यन्त अत्यधिक आनन्द पूर्वक रही । कलियुग में मुक्ति पाखण्ड रूपी रोग से पीडित हो गयी और तुम्हारी आज्ञा प्राप्त करके वह शीघ्र ही पुनः वैकुण्ठ में चली गयी ।।९-१०।।

स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ।
पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ।।११।।

उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ।
तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥१२॥

अन्वयः— त्वया स्मृता मुक्तिः अपि अत्रैव आयाति याति च त्वया इमौ पुत्रीकृत्य स्वस्यैव सह रक्षितौ । कलौ उपेक्षातः तव सुतौ मन्दौ वृद्धौ जातौ तथापि त्वं चिन्तां मुञ्च अहम् उपायम चिन्तयामि ॥११-१२॥

अनुवाद— तुम्हारे द्वारा स्मरण किए जाने पर मुक्ति भी भूलोक में आती है और फिर चली जाती है; किन्तु ज्ञान और वैराग्य को पुत्र बनाकर तुमने अपने पास ही रखा । कलियुग में उपेक्षित होने के कारण ये तुम्हारे पुत्र वृद्ध और मन्द हो गये हैं, फिर भी तुम चिन्ता का परित्याग कर दो; मैं उपाय को सोच रहा हूँ ॥११-१२॥

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥१३॥
अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् । तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥१४॥
तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह । पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयाः कृष्णमन्दिरम् ॥१५॥

अन्वयः— हे वरानने ! कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति तस्मिन् त्वां गेहे-गेहे जने जने । स्थापयिष्यामि अन्य धर्मान् तिरस्कृत्य (च) महोत्सवान् पुरस्कृत्य लोके (यदि) त्वां न प्रवर्तये तदा अहं हरेर्दासो न । किञ्च इह कलौ ये जीवा त्वदन्विताः भविष्यन्ति (ते) पापिनोऽपि निर्भयं कृष्णमन्दिरम् गमिष्यन्ति ॥१३-१५॥

अनुवाद— हे सुन्दर मुख वाली ! कलि के समान कोई भी युग नहीं है । इस युग में मैं तुमको प्रत्येक घरों तथा प्रत्येक लोगों के हृदय में स्थापित करूँगा । अन्य धर्मों को दबाकर तथा भक्तों के महोत्सव को आगे करके लोक में यदि मैं तुमको प्रचारित नहीं कर सका तो मैं श्रीहरि का दास नहीं । इस कलियुग में भक्ति से युक्त जो जीव पापी भी होंगे वे श्रीभगवान् के सभी प्रकार के भयों से रहित लोक में जायेंगे ॥१३-१५॥

येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी । न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥१६॥
न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वाऽसुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥१७॥

अन्वयः— येषां चित्ते प्रेमरूपिणी भक्तिः सर्वदा वसेत् अमलमूर्तयः ते स्वप्नेऽपि कीनाशं न पश्यन्ति । न प्रेतः, न पिशाचः, राक्षसेवा असुर अपि वा भक्तियुक्त मनस्कानां स्पर्शने न प्रभुः भवेत् ॥१६-१७॥

अनुवाद— जिन लोगों के हृदय में प्रेम स्वरूपिणी भक्ति का सदा निवास होता है वे लोग स्वप्न में भी कभी यमराज को नहीं देखते हैं । जिनके मन में सदा भक्ति निवास करती है, उन लोगों का प्रेत, पिशाच, राक्षस या असुर स्पर्श करने में समर्थ नहीं होते हैं ॥१६-१७॥

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा । हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥१८॥

अन्वयः— हरिः हि तपोभिःन वेदैः च, न, ज्ञानेनापि न कर्मण साध्यते भक्त्या (साध्यते) तत्र गोपिकाः प्रमाणम्॥१८॥

अनुवाद— श्रीहरि तपस्या, वेदाध्ययन, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के द्वारा वश में नहीं होते है, वे तो केवल भक्ति से ही भक्तों के वश में हो जाते हैं, इस विषय में गोपिकायें ही प्रमाण हैं ॥१८॥

नृणां जन्मसहस्त्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ।
कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्तया कृष्णः पुरः स्थितः ॥१९॥

अन्वयः— नृणाम् जन्मसहस्त्रेण हि भक्तौ प्रीतिः जायते । कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः॥१९॥

अनुवाद— मनुष्यों द्वारा हजारों जन्मों में किए गये पुण्यों के कारण ही भक्ति में प्रेम उत्पन्न होता है । कलियुग में केवल भक्ति ही सार है, भक्ति से साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण सामने ही उपस्थित हो जाते हैं ॥१९॥

भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये । दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः ॥२०॥
अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः । अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥२१॥

अन्वयः— ये च भक्तिद्रोहकराः ते जगत् त्रये सीदन्ति । पुरा भक्तविनिन्दकः दुर्वासा दुःखमापन्नः । व्रतैः अलम्, तीर्थैः अलम्, योगै अलम्, मखै अलम्, ज्ञानकथालापैः अलम् एका भक्तिः एव मुक्तिदा ॥२०-२१॥

अनुवाद— जो लोग भक्ति से द्रोह करते हैं, वे तीनों लोकों में कष्ट ही पाते हैं । प्राचीन काल में भक्ति की निन्दा करने वाले महर्षि दुर्वासा को बड़ा ही कष्ट उठाना पड़ा । व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ तथा ज्ञान कथाओं की चर्चा करने से कोई लाभ नहीं है, केवल भक्ति ही मुक्ति प्रदान करती है ।

सूत उवाच

इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा । सर्वाङ्गपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥

अन्वयः— इति नारदनिर्णीतम् स्वमाहात्म्यं निशम्य सर्वाङ्गपुष्टिसंयुक्त सा नारदम् वाक्यम् अब्रवीत् ॥२२॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से नारदजी द्वारा निर्णय किए गये अपने माहात्म्य को सुनकर भक्ति के सारे अङ्ग पुष्ट हो गये उसने नारदजी से कहा ॥२२॥

श्रीभक्तिरुवाच

अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ।
न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥२३॥
कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् । पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय॥२४॥

अन्वयः— अहो नारद धन्यः असि, मयि ते प्रीतिः निश्चला कदाचित् न विमुञ्चामि, ते चित्ते सर्वदा स्थास्यामि साधो! कृपालुना त्वया मद्‌बाधा क्षणात् ध्वंसिता, पुत्रयोः चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥२३-२४॥

भक्ति ने कहा

अनुवाद— नारदजी आप धन्य हैं । आपका मुझमें निश्चला प्रेम है । मैं आपके हृदय में सदा निवास करूँगी। कभी भी आपका परित्याग नहीं करूँगी । हे साधो ! आपने कृपा करके मेरे कष्ट को क्षणभर में दूर कर दिया । मेरे पुत्रों को चेतना नहीं है, अतएव इन दोनों को आप जगा दें ॥२३-२४॥

सूत उवाच

तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः । तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥२५॥

अन्वयः— तस्याः वचः समाकर्ण्य नारदः कारुण्यं गतः । कराग्रेण विमर्दयन् तयोः बोधनम् आरेभे ।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भक्ति की बातों को सुनकर नारदजी को करुणा आ गयी और वे अपने हाथों से हिला-डुलाकर इन दोनों को जगाने लगे ॥२५॥

मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् । ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥२६॥
वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः। बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥२७॥

अन्वयः— कर्णान्ते मुखं संयोज्य ज्ञान शीघ्रं प्रबुध्यताम्, रे वैराग्य प्रबुध्यताम् इति वाक्यं समुच्चरन् मुहुः मुहुः वेदवेदान्तघोषै; गीतापाठैश्च तेन बोध्यमानौ कथंचित् बलात् च उत्थितौ ॥२६-२७॥

अनुवाद— उन दोनों के कानों के सन्निकट मुँह को लगाकर, ज्ञान शीघ्र जगो, अरे वैराग्य जगो इस तरह जोर से शब्द का उच्चारण करके बार-बार वेदों और वेदान्तों का एवं गीता के पाठों से उनके द्वारा जगाये जाने पर वे दोनों किसी तरह बल लगाकर उठे ॥२६-२७॥

नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ। बकवत्पतितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमाङ्गकौ ॥२८॥
क्षुत्क्षमौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ। ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥२९॥

अन्वयः— उभौ नेत्रैः अनवलोकन्तौ, जृम्भन्तौ, सालसौ बकवत् पलितौ, प्रायः शुष्ककाष्ठसमाङ्गकौ, क्षुत्क्षामौ पुनः स्वापपरायणौ तौ निरीक्ष्यैव ऋषिः मया किं विधेयम् इति चिन्तापरः जातः ॥२८-२९॥

अनुवाद— नेत्रों को खोलकर नहीं देखने वाले, जम्भाई लेने वाले तथा आलस्य युक्त, बगुलों के समान सफेद हुए केशों वाले तथा जिनके अङ्ग प्रायः सूखकर काष्ठ के समान कठोर हो गये थे, भूख तथा प्यास के कारण अत्यन्त दुर्बल और फिर सोने लगने वाले उन दोनों को देखकर नारदजी चिन्तित हो गये, वे सोचने लगे अब मैं क्या करूँ ॥२८-२९॥

अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् । चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥३०॥

अन्वयः— हे भार्गव ! अहो निद्रा, महत्तरम् वृद्धत्वं च कथं याति इति चिन्तयन् गोविन्दं स्मारयामास ॥३०॥

अनुवाद— हे शौनकजी ! इन दोनों की नींद और उससे भी बढ़कर वार्धक्य कैसे जाय ? इस बात की चिन्ता करते हुए नारदजी श्रीभगवान् का स्मरण करने लगे ॥३०॥

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति। उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥३१॥
एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर । तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः ॥३२॥

अन्वयः— तदैव व्योम वाणी अभूत् ऋषे मा खिद्यताम् इति अयं ते उद्यमः सफलः भविष्यति इति संशयः न । हे सुरर्षे एतदर्थं त्वम् सत्कर्म समाचर ते तत् कर्म साधुभूषणाः साधवः अभिधास्यन्ति ॥३१-३२॥

अनुवाद— उसी समय आकाशवाणी हुयी, हे नारदजी ! आप उदास न होएँ आपका यह प्रयास सफल होगा; इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । इसके लिए आप एक सत्कर्म करें उस कर्म को साधुओं को भी अलंकृत करने वाले साधु पुरुष आपको बतलायेंगे ॥३१-३२॥

सत्कर्मणि कृते तस्मिन्सनिद्रा वृद्धताऽनयोः। गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥३३॥
इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् । नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥३४॥

अन्वयः— तस्मिन् कर्मणि कृते अनयोः सनिद्रा वृद्धता क्षणात् गमिष्यति, सर्वतः भक्तिः प्रसरिष्यति । इत्याकाश वचः तत् सर्वैः स्पष्टं श्रुतम् । इदं न ज्ञातम् इति ब्रुवन् नारदः विस्मयं लेभे ॥३३-३४॥

अनुवाद— इस सत् कर्म को करते ही इन दोनों की निद्रा के साथ ही बृद्धता भी क्षणभर में चली जायेगी और सर्वत्र भक्ति का प्रसार होगा । इस आकाशवाणी को वहाँ के सबलोगों ने साफ-साफ सुना किन्तु नारदजी यह कहते हुए आश्चर्यित हो गये कि मैं इसको नहीं समझ सका ॥३३-३४॥

नारद उवाच

अनयाकाशवाण्याऽपि गोप्यत्वेन निरूपितम्। किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥३५॥
क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ।
मयात्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ॥३६॥

अन्वयः— अनया आकाशवाण्या अपि गोप्यत्वेन निरूपितम् । येन तयोः कार्यं भवेत् तत् साधनं किम् । ते सन्तः क्व भविष्यन्ति कथं साधनं दास्यन्ति ? यद् व्योमभाषया उक्तम् अत्र मया किं कर्तव्यम् ॥३५-३६॥

अनुवाद— इस आकाश वाणी ने भी गुप्त रीति से ही साधन को बतलाया है । किस साधन का अनुष्ठान किया जाय जिससे कि इन दोनों का कार्य सम्पन्न हो ? वे सन्त न जाने कहाँ होंगे और किस प्रकार से वे उस साधन को बतलायेंगे ? आकाशवाणी ने जो कहा है उसके विषय में मुझको क्या करना चाहिए ॥३५-३६॥

सूत उवाच

तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः । तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥३७॥
वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ।
असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥
मूकीभूतास्तथाऽन्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः ॥३८॥

अन्वयः— तत्र द्वौ अपि संस्थाप्य नारदो मुनिः निर्गतः । विनिष्क्रम्य तीर्थ-तीर्थं मार्गे मुनीश्वंरान् पृच्छन् । सर्वैः वृत्तान्तः श्रूयते (किन्तु) निश्चित्य किंचित् नोच्यते । केचन असाध्यं प्रोचुः अपरे च दुर्ज्ञेयम् इति तथा अन्ये तु मूकीभूताः कियन्तः तु पलायिताः ॥३७-३८॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— वहीं पर उन दोनों को छोड़कर नारद मुनि वहाँ से चल पड़े । वे प्रत्येक तीर्थों में जाकर मार्ग में मिलने वाले मुनीश्वरों से पूछते थे । उस वृत्तान्त को सबलोग सुनते थे किन्तु कोई भी निश्चय करके नहीं बोलता था। कुछ लोगों ने उसको असाध्य बतलाया दूसरे लोगों ने कहा कि इसको जान पाना कठिन है । कुछ लोग तो मौन हो गये और कुछ लोग वहाँ से भाग गये ॥३७-३८॥

हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः। वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥३९॥
भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा। उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥४०॥

अन्वयः— त्रैलोक्ये विस्मयावहः महान् हाहाकार आसीत् । वेद वेदान्तघोषैः च गीता पाठैः विवोधितम् भक्ति ज्ञान विरागाणाम् त्रिकं यदा न उदतिष्ठत् (तदा) अपरः उपायो नास्ति इति जनाः कर्णे-कर्णे अजपन् ॥३९-४०॥

अनुवाद— त्रैलोक्य में आश्चर्य जनक महान् हहाकार मच गया । जब वेदों तथा वेदान्तों की ध्वनियों तथा गीता के पाठ से जगाये जाने पर भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य इन तीनों का गण नहीं जगा तो इसका कोई भी दूसरा उपाय नहीं है । इस तरह से सभी लोग आपस में कहने लगे ॥३९-४०॥

योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत्। तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥४१॥
एवं ऋषिगणैः पृष्टैर्निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥४२॥

अन्वयः— यत् तु स्वयं योगिना नारदेन अपि न ज्ञायते तत् इह इतरैः मानुषैः कथं वक्तुं शक्यते एवम् निर्णीय पृष्टैः ऋषिगणैः दुरासदम् उक्तम् ॥४१-४२॥

अनुवाद— जिसका पता स्वयं योगिराज नारदजी को भी नहीं है, उसको दूसरे संसारी लोग कैसे बतला सकते हैं ? इस तरह से निश्चय करके पूछे गये ऋषियों ने उसे दु:साध्य बतलाया ।।४१-४२।।

ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः। तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ।।४३।।
तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् । कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ।।४४।।

अन्वयः— अथ चिन्तातुरः सः तदर्थम् अत्र तपश्चरामि इति कृतनिश्चयः बदरीवनमागतः । तावत् पुरतः कोटिसूर्यसमाभासान् सनकादीन् मुनीश्वरान् मुनिसत्तमः ददर्श उवाच च ।।४३-४४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् चिन्ता से व्याकुल नारदजी बदरिकाश्रम में यह सोचकर गये कि उस कार्य को करने के लिए मैं यहीं पर तपस्या करूँगा । उसी समय उन्होंने अपने सामने करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान् सनकादि मुनीश्वरों को देखा और कहा ।।४३-४४।।

नारद उवाच

इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः सङ्गमः स्थितः । कुमारा वदतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ।।४५।।

अन्वयः— कुमारा इदानी भूरि भाग्येन भवद्भिः सङ्गमः अभवत् ममोपरि कृपां कृत्वा शीघ्रं ब्रुवताम् ।।४५।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे सनकादिक महर्षियों बहुत बड़े भाग्य से मेरा आपलोगों से सङ्गम हुआ है । मेरे ऊपर कृपा करके आपलोग मुझे शीघ्र ही उस साधन को बतलायें ।।४५।।

भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः। पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।।४६।।
सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः । लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ।।४७।।
हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः । अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ।।४८।।
येषां भ्रूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा। भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ ।।४९।।
अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह। अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ।।५०।।

अन्वयः— भवन्तः सर्वे योगिनः बुद्धिमन्तः, बहुश्रुताः, पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः, लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः, येषां मुखे नित्यं हरिःशरणम् एवं हि वचः, अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान् न बग्धते । पुरा येषां भ्रूमङ्गामात्रेण हरेः द्वारपालौ भूमौ निपतितौ, यत् कृपातः सद्यः परम् गतौ अहो भाग्यस्य योगेन इह भवताम्, दर्शनम्, दीने मयि दयापरैः अनुग्रहः तु कर्तव्यः ।।४६-५०।।

अनुवाद— आप सभी लोग योगी, बुद्धिमान और बहुश्रुत हैं । आप लोग सदा पाँच वर्ष की अवस्था वाले बने रहते है । किन्तु आपलोग पूर्वजों के भी पूर्वज हैं । आप लोग सदा वैकुण्ठ धाम में ही निवास करते हैं और निरन्तर हरि कीर्तन करते रहते हैं । श्रीभगवान् के लीलामृत के रस का पान करके उसी में सदा उन्मत्त बने रहते हैं । एकमात्र श्रीभगवान् की कथा ही आपलोगों की कथा का आधार है । आपलोग श्रीहरि ही हमारे रक्षक है, इस वाक्य का अपने मुख से उच्चारण किया करते हैं, इसीलिए काल से प्रेरित होकर वृद्धावस्था आप लोगों को बाधित नहीं करती हैं । आपलोगों के भ्रूभङ्ग मात्र से श्रीभगवान् के द्वारपाल जय और विजय पृथिवी पर गिर पड़े थे। पुनः आपलोगों की कृपा से शीघ्र ही मुक्त हो गये । मेरे बहुत बड़े सौभाग्य के कारण आपलोगों का यहाँ मुझे दर्शन मिला है । मैं अत्यन्त दीन हूँ और आपलोग दयालु हैं अतएव आपलोग मुझ पर कृपा करें ।।४६-५०।।

यत्तत्किं साधनमुच्यताम् । अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम्॥५१॥
अशरीरगिरोक्तं भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् । स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥५२॥

अन्वयः— अशरीरगिरा यत् उक्तं तत् साधनं किम् इत्युच्यताम् । कथम् तावत् अनुष्ठेयम् सविस्तरम् ब्रुवन्तु । भक्तिज्ञान विरागाणाम् सुखम् कथम् उत्पद्यते प्रेमपूर्वम् प्रयत्नतः स्थापनम् कथम् ॥५१-५२॥

अनुवाद— आकाशवाणी ने जिसको कहा था वह साधन कौन है यह आपलोग बतलायें, उसका अनुष्ठान कैसे करना चाहिए ? इस बात को आपलोग मुझे विस्तार पूर्वक बतलायें । भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को सुख कैसे मिल सकता है ? और किस प्रयास से इन तीनों की सभी वर्णों में स्थापना प्रेम पूर्वक की जा सकती हैं ॥५१-५२॥

कुमारा ऊचुः

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह । उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥५३॥

अन्वयः— देवर्षे चिन्तां मा कुरु, चित्ते हर्षं समावह, पूर्व एव हि अत्र सुखसाध्यः उपायो वर्तते ॥५३॥

सनकादियों ने कहा

अनुवाद— देवर्षे ! आप चिन्ता न करें मन में प्रसन्नता लाइये । पहले से ही उनके उद्धार का एक सरल उपाय हैं ॥५३॥

अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः । सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥५४॥

अन्वयः— अहो नारद धन्योऽसि । विरक्तानां शिरोणिः (असि) । सदा श्रीकृष्णदासानाम् अग्रणीः योगभास्करः (असि) ।

अनुवाद— नारदजी आप धन्य हैं । विरक्तों में श्रेष्ठ हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के दासों में आप अग्रगण्य हैं और भक्ति योग के प्रकाशक हैं ॥५४॥

त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि । घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥५५॥

अन्वयः— भक्त्यर्थम् अनुवर्तिनि त्वयि चित्रं न मन्तव्यम्, कृष्णभक्तानां भक्तेः संस्थापना सदा घटते ॥५५॥

अनुवाद— आप जो भक्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं, यह आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण के दासों के लिए भक्ति की स्थापना सदा उचित ही है ॥५५॥

ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः । श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः॥५६॥

अन्वयः— लोके ऋषिभिः बहवः पन्थानः प्रकटीकृताः । ते सर्वे श्रमसाध्याः प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥५६॥

अनुवाद— संसार में ऋषियों ने अनेक मार्गों को प्रकट किया है, वे सब श्रमसाध्य हैं तथा प्रायः स्वर्गरूपी फल को प्रदान करने वाले हैं ॥५६॥

वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्तते ।
तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥५७॥

अन्वयः— वैकुण्ठसाधकः (यः) पन्थाः स तु गोप्यः हि वर्तते । तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायः भाग्येन लभ्यते ॥५७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् को प्राप्त करने वाला मार्ग तो अभी तक गुप्त ही है । उसका उपदेश करने वाला पुरुष तो भाग्यवशात् ही मिलता है ॥५७॥

सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा । तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥५८॥

अन्वयः— पुरा व्योमवाचा तु तव यत् सत्कर्म निर्दिष्टं तत् अद्य उच्यते स्थिरचित्तः प्रसन्न धीः सन् शृणुष्व ॥५८॥

अनुवाद— पहले आकाशवाणी ने आपको जो सत्कर्म कहा है उसे मैं कह रहा हूँ उसको आप चित्त स्थिर करके प्रसन्नता पूर्वक सुनें ॥५८॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे । स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥५९॥

अन्वयः— द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा अपरे च स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाः (ये) ते कर्म विसूचकाः ॥५९॥

अनुवाद— द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ तथा दूसरे स्वाध्याय रूपी ज्ञानयज्ञ ये सभी कर्म की सूचना देते हैं ॥५९॥

सत्कर्म सूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः । श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥६०॥

अन्वयः— बुधैः नूनं ज्ञानयज्ञः सत्कर्म सूचकः स्मृतः । स तु श्रीमद्भागवतालापः शुकादिभिः गीतः ॥६०॥

अनुवाद— विद्वानों ने ज्ञानयज्ञ को ही सत्कर्म का सूचक माना है । वह तो श्रीमद्भागवत का परायण ही है और उसका गायन शुक आदि महर्षियों ने किया हैं ॥६०॥

भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् । व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥६१॥

अन्वयः— तद्घोषेण भक्ति-ज्ञान-विरागाणाम् महत् बलम् । तयोः कष्टं व्रजिष्यति भक्तेः सुखं भविष्यति ॥६१॥

अनुवाद— उसके शब्द को सुनने से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को महान् बल प्राप्त होगा । उन दोनों का कष्ट दूर हो जायेगा और भक्ति को सुख मिलेगा ॥६१॥

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः । कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥६२॥

अन्वयः— श्रीमद्भागवतध्वनेः इमे सर्वे कलेः दोषाः हि सिंह शब्दात् वृका इव प्रलयं गमिष्यन्ति ॥६२॥

अनुवाद— श्रीमद्भागवत की ध्वनि से कलियुग के ये सारे दोष उसी तरह से विनष्ट हो जायेंगे, जिस तरह सिंह के शब्द को सुनकर वृकों का समूह पलायन कर जाता है ॥६२॥

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा । प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥६३॥

अन्वयः— ततः ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता प्रेमरसावहा भक्तिः प्रतिगेहम् प्रतिजनम् क्रीडां करिष्यति ॥६३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ज्ञान और वैराग्य के साथ प्रेम रस को प्रवाहित करने वाली भक्ति प्रत्येक गृहों तथा प्रत्येक मनुष्यों के हृदय में क्रीडा करेगी ॥६३॥

नारद उवाच

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् । भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥६४॥

श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥६५॥
छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ।
विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥६६॥

अन्वय:— वेदवेदान्तघोषै: गीतापाठैश्च प्रबोधितं भक्तिज्ञानविरागाणां त्रिकं यदा न उदतिष्ठत् तत् श्रीमद्भागवतालापात् कथं बोधम् एष्यति । तत्कथासु तु श्लोके-श्लोके पद-पदे वेदार्थ: । भवन्त: अमोघदर्शना: एनं हि संशयं छिन्धि हे शरणागत वत्सला: अत्र विलम्ब: न कार्य: ।।६४-६६।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— जब मेरे द्वारा वेदों तथा वेदान्तों की ध्वनियों से जगाये जाने पर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ये तीनों नही जगे तो श्रीमद्भागवत के परायण से वे कैसे जगेंगे ? आप लोगों का दर्शन कभी भी व्यर्थ नहीं होता है । आपलोग मेरे इस सन्देह को दूर करें । श्रीमद्भागवत की कथाओं में भी प्रत्येक श्लोकों तथा प्रत्येक पदों में वेदार्थ ही तो है । हे शरणागत वत्सलों ! आप लोग इसमें देर न करें ।।६४-६६।।

कुमारा ऊचु:

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा । अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृति:।।६७।।

अन्वय:— वेदोपनिषदाम् सारात् भागवती कथा जाता । तत: पृथग्भूता अत्युत्तमा फलाकृति: भाति ।।६७।।

सनकादिक महर्षियों ने कहा

अनुवाद— श्रीमद्भागवत की कथा वेदों तथा उपनिषदों के सारभाग से बनी है, अतएव उससे अलग ही यह अत्यन्त उत्तम फल के समान प्रतीत होती है ।।६७।।

आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वदते यथा । संभूय स पृथग्भूत: फले विश्वमनोहर: ।।६८।।

अन्वय:— यथा अमूलाग्रं तिष्ठान् रस: न स्वदते आस्ते संभूय: फले पृथग्भूत: विश्वमनोहर: ।।६८।।

अनुवाद— जिस तरह वृक्ष के जड़ से लेकर शाखा के ऊपरी भाग पर्यन्त में रस रहता है, किन्तु उसका उस रूप में आस्वादन नहीं किया जा सकता किन्तु वही जब उससे अलग होकर फल के रूप में परिणत हो जाता है तो फिर वह संसार में सबको प्रिय लगता है ।।६८।।

भावप्रकाशिका

इस श्लोक में वेदों तथा उपनिषदों को वृक्ष के रूप में बतलाया गया है, और श्रीमद्भागवत को उसका फल बतलाया गया है । सम्पूर्ण वृक्ष में जो रस रहता है उसी का कुछ अंश फल के रूप में परिणत होता है। किन्तु कोई भी वृक्ष में विद्यमान रस की आस्वादनीयता का अनुभव नहीं कर पाता है । किन्तु वृक्ष के फल का आस्वादन सबलोग बड़े प्रेम से करते हैं । यह कहकर श्रीमद्भागवत की कथा को वेदों तथा उपनिषदों के सारभाग के रूप में अभिहित किया गया है ।।६८।।

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते । पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्धनम् ।।६९।।

अन्वय:— यथा दुग्धे स्थितं सर्पि: स्वादाय न उपकल्पते । तद् हि गव्यं पृथग् भूतं देवानां रसवर्धनम् ।।६९।।

अनुवाद— जिस तरह दुग्ध में घी विद्यमान रहता है किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता है । लेकिन वही घी जब उससे अलग हो जाता है तो वह देवताओं को भी प्रिय लगने लगता है ।।६९।।

इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ।।७०।।

अन्वय:— ईक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति सा च पृथगभूता यथा मिष्टा तथा भागवती कथा ।।७०।।

अनुवाद— ईख में आमूलचूल शर्करा (खाड) व्याप्त रहती है किन्तु वही शर्करा जब ईख से अलग हो जाती है तो उसकी कुछ और ही मिठास होती है । इसी तरह की भागवती कथा है ।।७०।।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ।।७१।।

अन्वयः— इदं भागवतं नाम पुराणम् ब्रह्म सम्मितम् । भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ।

अनुवाद— यह भागवत नामक पुराण वेदों के समान है महर्षि व्यास ने इसका प्रकाशन भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की स्थापना के लिए किया है ।।७१।।

वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि । परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ।।७२।।
तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् । तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ।।७३।।
तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् । श्रीमद्भागवतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ।।७४।।

अन्वयः— पुरा वेदवेदान्तसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि परितापवति अज्ञानसागरे मुह्यति व्यासे तदा त्वया चतुः श्लोक समन्वितं प्रोक्तम् तदीयश्रवणात् बादरायणः सद्यः निर्बाधः तत्र श्रीमद्भागवतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ते केन विस्मयः यतः भवान् प्रश्नकरः ।।७२-७४।।

अनुवाद— पूर्वकाल में वेदों तथा वेदान्तों में पारङ्गत, गीता शास्त्र के भी प्रणेता महर्षि व्यास जब खिन्न होकर अज्ञान सागर में डूब रहे थे उस समय चार श्लोकों वाले श्रीमद् भागवत का आपने उनको उपदेश दिया उसको सुनकर महर्षि व्यास उसी क्षण सम्पूर्ण चिन्ताओं से मुक्त हो गये । उस श्रीमद्भागवत के विषय में आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है कि आप प्रश्न कर रहे हैं । आप उन तीनों को सभी शोकों और दुःखों के विनाशक श्रीमद्भागवत को सुनाइये ।।७२-७४।।

नारद उवाच

यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ।
निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ।।७५।।

अन्वयः— यद् दर्शनं अशुभानि सद्यः हन्ति भवदुःखदवर्दितानाम् च श्रेयः तनोति, निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाश कृतये शरणं गतः अस्मि ।।७५।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— जिन आप महानुभावों का दर्शन जीवों के समस्त पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है, संसार के दुःख रूपी दावाग्नि से संतप्त जीवों के कल्याण का आपलोगों का दर्शन विस्तार करता है । आपलोग निरन्तर शेषजी के हजारों मुखों से निकले भगवत कथामृत का ही पान करते रहते हैं । मैं प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रकाश करने के लिए आपलोगों की शरणागति करता हूँ ।।७५।।

भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ।।७६।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अन्वयः— वै बहुजन्मसमार्जितेन भाग्योदयेन च यदा पुरुषः सत्सङ्गमं लभतेः तदा अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय विवेकः उदयते ।।७६।।

अनुवाद— यह निश्चित है कि अनेक जन्मों में अर्जित पुण्यों के फल स्वरूप जब भाग्योदय होता है उस समय मनुष्य सत्सङ्ग को प्राप्त करता है उस समय वह अज्ञानजन्य मोह तथा मद रूपी अज्ञानान्धकार को विनष्ट करके उसके विवेक को उदित कर देता है ।।७६।।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के उत्तरखण्ड के श्रीमद्भागवत पुराण के माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में कुमार नारद संवाद नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तीसरा अध्याय

भक्ति के कष्ट की निवृत्ति

नारद उवाच

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् । भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ।।१।।

अन्वयः— (अहम्) भक्तिज्ञानविरागणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ज्ञानयज्ञं करिष्यमि ।।१।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— मैं भक्ति ज्ञान और वैराग्य की स्थापना करने के लिए सप्रयास शुकशास्त्र (श्रीमद्भागवत) की कथा से शुद्ध बने हुए ज्ञान यज्ञ को करूँगा ।।१।।

यत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह । महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ।।२।।

अन्वयः— मया यज्ञः कुत्र कार्यः तत् स्थलम् वाच्यताम् । वेदपारगैः (भवद्भिः) शुकशास्त्रस्य महिमा वक्तव्यः ।।२।।

अनुवाद— मुझे इस यज्ञ को कहाँ करना चाहिए इसके लिए आप लोग स्थान को बतलायें । आप सभी वेदपारङ्गत हैं; अतएव आपलोग श्रीमद्भागवत की महिमा को भी बतलायें ।।२।।

कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा । को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं वदतामितः।।३।।

अन्वयः— श्रीमद्भागवती कथा कियद्भिः दिवसैः श्राव्या तत्र को विधिः कर्तव्य इतः मम इदं ब्रुवताम् ।।३।।

अनुवाद— श्रीमद्भागवत की कथा कितने दिनों में सुनना चाहिए ? मुझे आप लोग यह भी बतलायें कि उसके सुनने की विधि क्या हैं ?।।३।।

कुमारा ऊचुः

शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने। गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ।।४।।
नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम्। नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ।।५।।
रम्यमेकान्तदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितम् । यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ।।६।।

अन्वयः— नारद विनम्राय, विवेकिने (तुम्यम्) वक्ष्यामः शृणु गङ्गाद्वारसमीपे तु नाना ऋषिगणैः जुष्टम् देवसिद्धनिषेवितम्, नानातरुलताकीर्णम्, नवकोमलवालुकम्, रम्यम्, एकान्तदेशस्थम् हेमपद्मसुसौरभम् आनन्दनामकम् तटम् । यत्समीपस्थ जीवानाम् चेतसि वैरं न स्थितम् ।।४-६।।

सनकादिक महर्षियों ने कहा

अनुवाद— हे नारद ! विनम्र तथा विवेकी आपको हमलोग बतलाते हैं, उसे आप सुनें । गङ्गाद्वार (हरिद्वार) के सन्निकट, अनेक ऋषि समुदायों से सेवित जिसका देवता और सिद्धगण भी सेवन करते हैं जो अनेक प्रकार के वृक्षों तथा लताओं से भरा है, जहाँ पर नवीन तथा कोमल बालू बिछी हुयी है । जो मनोहर तथा एकान्त में विद्यमान है और जहाँ सुवर्ण कमलों की सुगन्धि आती रहती है ऐसा आनन्द नामक तट है । वहाँ रहने वाले जीवों के अन्त:करण में वैर की भावना भी नहीं हैं ॥४-६॥

ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः । अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥७॥

अन्वयः— तत्र हि त्वया अप्रयत्नतः ज्ञानयज्ञः कर्तव्यः । तत्र च अपूर्वा रसरूपा कथा भविष्यति ॥७॥

अनुवाद— वहीं पर आपको बिना किसी प्रयास के ज्ञानयज्ञ करना चाहिए । वहाँ पर कथा भी अपूर्व रस से युक्त होयेगी ॥७॥

पुरस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णं कलेवरम् । तदद्वयम् च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्र गमिष्यति ॥८॥

अन्वयः— तत्र, पुरःस्थं, निर्बलं चैव जराजीर्णं कलेवरम् तदद्वयम् पुरस्कृत्य, भक्तिः गमिष्यति ॥८॥

अनुवाद— वहाँ पर सबों के सामने ही निर्बल तथा जरा के कारण जीर्ण शरीर वाले उन दोनों ज्ञान और वैराग्य को आगे करके भक्ति आयेगी ॥८॥

यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् । कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥९॥

अन्वयः— यत्र भगवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकम् व्रजेत् । कथा शब्दम् समाकर्ण्य तत् त्रिकं तरुणायते ॥९॥

अनुवाद— जहाँ पर भागवत की कथा होती है, वहाँ पर भक्ति आदि आ जाते है । कथा के शब्द को सुनकर उन तीनों का समूह तरुण हो जाता है ॥९॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः । गङ्गातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥१०॥

अन्वयः— ततः एवमुक्त्वा ते कथापानाय सत्वराः, कुमाराः नारदेन समम् गङ्गातटं समाजग्मुः ॥१०॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् कथारूपी अमृत के रस का पान करने के लिए शीघ्रता करने वाले सनकादिक देवर्षि नारदजी के साथ गङ्गातट पर आ गये ॥१०॥

यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् । भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥११॥

अन्वयः— यदा ते तटं याताः तदा भूर्लोके, देवलोके तथैव ब्रह्मलोके च कोलाहलः अपि अभूत् ॥११॥

अनुवाद— जिस समय वे गङ्गा तट पर गये उसी समय भूलोक, देवलोक तथा ब्रह्मलोक में भी कोलाहल हो गया ॥११॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः । धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥१२॥

अन्वयः— श्रीभागवतपीयूष पानाय रसलम्पटाः, ये च वैष्णवाः ते सर्वे अपि धावन्तः प्रथमं आययुः ॥१२॥

अनुवाद— श्रीमद्भागवत कथा रूपी अमृत का पान करने के लोभी जो श्रीवैष्णव थे वे सभी दौड़ते हुए सर्वप्रथम वहाँ आये ॥१२॥

भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकण्डपुत्रोऽत्रिजपिप्पलादाः ॥१३॥
योगेश्वरा व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ।
सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिरराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥१४॥

अन्वयः— भृगुः, वसिष्ठः, च्यवनः, गौतमः च मेघातिथिः, देवलदेवरातौ रामः तथा गाधिसुतः शाकलः च, मृकण्डुपुत्रः अत्रिजपिप्पलादाः, योगेश्वरौ व्यास पराशरौ, छायाशुकः, जाजलिः जह्नुमुख्याः अमी सर्वेऽपि मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिः अतिप्रणयेन युक्ताः आययुः ॥१३-१४॥

अनुवाद— भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुरामजी, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय महर्षि, महर्षि अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय, पिप्पलाद योगेश्वर व्यास और पराशर, छायाशुक, जाजलि, तथा जह्नु आदि ये सभी मुनिगण अपने पुत्रों, शिष्यों और पत्नियों के साथ अत्यन्त प्रेम पूर्वक वहाँ आये ॥१३-१४॥

वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः । दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि तथाययुः॥१५॥

अन्वयः— च वेदान्तानि, वेदाः, मन्त्राः तन्त्राः, दशसप्तपुराणानि तथा षट्शास्त्राणि आययुः ॥१५॥

अनुवाद— इसके अतिरिक्त सभी वेदान्त (उपनिषदें) सभी वेद, सभी मन्त्र, सभी तन्त्र सत्रह पुराण और छहो शास्त्र वहाँ शरीर धारण करके आये ॥१५॥

गङ्गाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च। क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिवनानि च॥१६॥
नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वकिन्नराः। गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः संबोध्य चानयत् ॥१७॥

अन्वयः— तत्र गङ्गाद्याः सरितः पुष्करादि सरांसि, क्षेत्राणि च, सर्वा दिशः दण्डकादि वनानि । तत्र नगादयः देवगन्धर्व दानवाः ययुः । तत्र गुरुत्वात् नायातान् भृगुः सम्बोध्य च अनयत् ॥१६-१७॥

अनुवाद— वहाँ पर गङ्गा आदि नदियाँ पुष्कर आदि सरोवर कुरुक्षेत्र आदि क्षेत्र, सभी दिशाएँ, दण्डक आदि वन, हिमालय आदि पर्वत तथा देवता, गन्धर्व एवं दानव कथा सुनने के लिए आये । जो लोग अपने गौरव के कारण नहीं आये थे उन लोगों को महर्षि भृगु बुलाकर लाये ॥१६-१७॥

दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् । कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥१८॥

अन्वयः— अथ दीक्षिताः कृष्णतत्पराः सर्वेः वन्दिताः कुमाराः नारदेन दत्तम् आसनं निषेदुः ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् कथा सुनाने के लिए दीक्षित भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त तथा सबों के द्वारा वन्दित सनकादिक महर्षि नारदजी के द्वारा प्रदत्त उत्तम आसन पर बैठ गये ॥१८॥

वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः । मुख्यभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥१९॥

अन्वयः— वैष्णवाश्च, विरक्ताश्च, न्यासिनः ब्रह्मचारिणः मुखभागे स्थिताः तदग्रे च नारदः स्थितः ॥१९॥

अनुवाद— श्रोताओं में जो वैष्णव, विरक्त, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी थे वे सबसे आगे बैठे और उन लोगों से भी आगे यजमान नारदजी बैठे ॥१९॥

एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः । वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥२०॥

अन्वयः— एकभागे ऋषिगणाः तद् अन्यत्र दवौकसः, अन्यत्र वेदोपनिषदः अन्यत्र तीर्थानि अन्यतः स्त्रियः ॥२०॥

अनुवाद— एक ओर ऋषिगण बैठे, दूसरी ओर देवगण बैठे, तीसरी ओर वेद एवं उपनिषद्‌गण बैठे चौथी ओर सभी तीर्थ बैठे और पाञ्चवीं ओर स्त्रियाँ बैठीं ॥२०॥

जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दस्तथैव च । चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥२१॥

अन्वयः— जयशब्दः नमःशब्दः तथैव शङ्खशब्दः च चूर्ण-लाजा प्रसूनानां सुमहान् निक्षेपः अभूत् ॥२१॥

अनुवाद— उस समय जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खों की ध्वनियाँ हुयीं और अबीर लावा तथा पुष्पों की बहुत अधिक वृष्टि हुयी ॥२१॥

विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः । कल्पवृक्षप्रसूनानि सर्वांस्तत्र समाकिरन् ॥२२॥

अन्वयः— तत्र क्रियन्तो देवनायकाः विमानानि समारुह्य तान् सर्वान् कल्पवृक्ष प्रसूनैः समाकिरन् ॥२२॥

अनुवाद— कुछ श्रेष्ठ देवता विमानों पर चढ़कर वहाँ पर बैठे हुए सभी लोगों पर कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा किए ॥२२॥

सूत उवाच

एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च । माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥२३॥

अन्वयः— एवं एकचितेषु तेषु महात्मने नारदाय श्रीमद्भागवतस्य माहात्म्यम् स्पष्टम् ऊचिरे ॥२३॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से जब लोग एकाग्रचित्त हो गये तो सनकादिक महर्षियों ने नारदजी को श्रीमद्भागवत के माहात्म्य को स्पष्ट रूप से सुनाया ॥२३॥

कुमारा ऊचुः

अथ ते संप्रवक्ष्यामो महिमा शुकशास्त्रजः । यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता॥२४॥

अन्वयः— अथ ते अस्माभिः शुकशास्त्रजः महिमा वर्ण्यते । यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥२४॥

अनुवाद— अब हमलोग आपको श्रीमद्भागवत की महिमा को सुनाते हैं उसके सुन लेने मात्र से मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है ॥२४॥

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा । यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत्॥२५॥

अन्वयः— श्रीमद्भागवती कथा सदा सेव्या सदा सेव्या यस्याः श्रवण मात्रेण हरिः चित्तं समाश्रयेत् ॥२५॥

अनुवाद— श्रीमद्भागवत की कथा का सेवन सदैव करना चाहिए इसके सुन लेने मात्र से श्रीहरिः हृदय में प्रवेश कर जाते हैं ॥२५॥

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्रो द्वादशस्कन्यसंमितः । परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥२६॥

अन्वयः— ग्रन्थः अष्टदशसाहस्त्रः द्वादशस्कन्धसम्मितः । परीक्षितशुकसंवादः । तत् भागवतं च शृणु ॥२६॥

अनुवाद— इस ग्रन्थ में अठारह हजार श्लोक हैं । यह बारह स्कन्धों से युक्त है । इसमें परीक्षित् और शुकदेवजी का संवाद है आप इस भागवत शास्त्र को ध्यान देकर सुनें ॥२६॥

तावत्संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् । यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम्॥२७॥

अन्वयः— पुमान् अस्मिन् संसार चक्रे अज्ञानतः तावत् भ्रमते यावत् क्षणम् शुकशास्त्रकथा कर्णगता नास्ति ॥२७॥

अनुवाद— जीव इस संसार चक्र में अज्ञान वशात् तब तक पड़ा रहता है जब तक उसके कान में क्षणभर के भी लिए श्रीमद्भागवत की कथा नहीं पड़ जाती है ॥२७॥

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः । एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥२८॥

अन्वयः— भ्रमावहैः बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च श्रुतैः किं एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥२८॥

अनुवाद— भ्रम को उत्पन्न करने वाले अनेक शास्त्रों तथा पुराणों का श्रवण करना व्यर्थ है । मुक्ति प्रदान करने के लिए अकेला भागवत शास्त्र ही गरज रहा है ॥२८॥

कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे । तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥२९॥

अन्वयः— यद्गृहे भागवतस्य कथा अपि नित्यं भवति हि तद् गृहं तीर्थरूपम् वसतां पापनाशनम् ॥२९॥

अनुवाद— जिस घर में प्रतिदिन भागवत की कथा भी होती है, वह गृह तीर्थ स्वरूप हो जाता है और उस घर में रहने वालों का पाप विनष्ट हो जाता है ॥२९॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३०॥

अन्वयः— अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च शुकशास्त्रकथायाः षोडशीं कलां नार्हन्ति ॥३०॥

अनुवाद— हजारों अश्वमेध यागों तथा सैकड़ों वाजपेय यागों का फल श्रीमद्भागवत कथा के फल का सोहलवें भाग भी नहीं हो सकता है ॥३०॥

तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः । यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ॥३१॥

अन्वयः— हे तपोधनाः अस्मिन् देहे तावत् पापानि निवसन्ति यावत् नरैः सम्यक् श्रीमद्भागवतं न श्रूयते ॥३१॥

अनुवाद— हे तपोधनों इस शरीर में पाप तब तक ही रहते हैं जब तक लोग श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण नहीं कर लेते हैं ॥३१॥

न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् । शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत्॥३२॥

अन्वयः— शकशास्त्रकथायाः फलेन न गङ्गा, न गया, न काशी, न पुष्करम् न प्रयागकम्, समतां नयेत् ॥३१॥

अनुवाद— फल की दृष्टि से भागवत कथा की समता गङ्गा, गया, काशी या पुष्कर या प्रयाग कोई भी तीर्थ नहीं कर सकता है ॥३१॥

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् । पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥३३॥

अन्वयः— यदि परां गतिम् इच्छसि तदा नित्यम् भागवतोद्भवम् श्लोकार्द्धम् श्लोकपादं वा स्वमुखेनैव पठस्व ॥३३॥

अनुवाद— यदि आप मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रतिदिन श्रीमद्भागवत पुराण के आधा श्लोक अथवा श्लोक का एक चरण ही अपने मुख से पढ़ें ॥३३॥

वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च। त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥३४॥
द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः। ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशीकथा ॥३५॥
तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च। एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥३६॥

अन्वयः— वेदादिः वेदमाता च, पौरुषं सूक्तम्, एव च त्रयी, भागवतम् चैव, द्वादशाक्षर एव च द्वादशात्मा प्रयागश्च

संवत्सरात्मकः कालः, ब्राह्मणाः च अग्निहोत्रं च, सुरभिः तथा द्वादशी, तुलसी च वसन्तः च, पुरुषोत्तम एव च, प्राज्ञैः एतेषां पृथग्भावः न इष्यते ।।३३-३६।।

अनुवाद— वेदादिः (ओङ्कार) वेदमाता (गायत्री) पुरुषसूक्त, त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीनों वेद) श्रीमद्भागवत (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) यह द्वादशार मन्त्र, द्वादशात्मा (बाहर शरीर वाले सूर्य भगवान्) प्रयाग, संवत्सरात्मक काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु, तथा भगवान् पुरुषोत्तम इन सबों में प्राज्ञ पुरुष तात्विक भेद नहीं मानते हैं ।।३४-३६।।

यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् । जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ।।३७।।

अन्वयः— यः च अनिशम् अर्थतः भागवतम् वाचयेत् (तस्य) जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते अत्र संशयः न ।।३७।।

अनुवाद— जो सदा अर्थज्ञान के साथ श्रीमद्भागवत को बाँचता है, उसके करोड़ों जन्मों में किए गये पाप निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं ।।३७।।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः । नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः।।३८।।

अन्वयः— यः नित्यं श्लोकार्धं श्लोकपादं वा भागवतं पठेत् (सः) राजसूयाश्वमेधयोः पुण्यमवाप्नोति ।।३८।।

अनुवाद— जो प्रतिदिन श्रीमद्भागवत के आधा श्लोक या चौथाई श्लोक को पढ़ता है, वह राजसूय तथा अश्वमेध इन दोनों यागों के फलों को प्राप्त करता हैं ।।३८।।

उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् । तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ।।३९।।
अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् । प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ।।४०।।

अन्वयः— नित्यं भागवतम् उक्तम् (नित्यं) च हरिचिन्तनम् कृतम् तुलसी पोषणं चैव धेनूनां सेवनम् च समम् । येनैव तु अन्तकाले शुकशास्त्रवाक् श्रूयते तस्यैव प्रीतः गोविन्दोऽपि वैकुण्ठं प्रयच्छति ।।३९-४०।।

अनुवाद— प्रतिदिन श्रीमद्भागवत् का पाठ करना तथा प्रतिदिन श्रीहरि का चिन्तन करना, प्रतिदिन तुलसी तथा गौ की सेवा करना ये चारो एक समान हैं । जो मनुष्य अपने अन्तिम समय में श्रीमद्भागवत का वाक्य सुन लेता है उस पर प्रसन्न होकर भगवान् गोविन्द भी उसको वैकुण्ठ प्रदान कर देते हैं ।।३९-४०।।

हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति यः । कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ।।४१।।

अन्वयः— यः पुमान् एतद् हेमसिंह युतम् वैष्णवाय ददाति सः कृष्णेन सह ध्रुवम् सायुज्यं लभते ।।४१।।

अनुवाद— जो मनुष्य इस श्रीमद्भागवत पुराण को सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर विष्णुभक्त को दान देता है वह निश्चित रूप से भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सायुज्यमुक्ति को प्राप्त करता है ।।४१।।

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किंचिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ।
चाण्डालवच्च खरवद्बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननी जनिदुःखभाजा ।।४२।।

अन्वयः— येन शठेन आजन्ममात्रम् अपि चित्तं निधाय शुकशास्त्रकथा किञ्चित् न पीता स्वजननीजनिदुःखभाजा तेन खरवत् चाण्डालवत् च स्वजन्म मिथ्या नीतम् ।।४२।।

अनुवाद— जिस दुष्ट ने अपने पूरे जीवन में चित्त को एकाग्र करके कभी भी श्रीमद्भागावत का रसास्वादन नहीं किया है वह तो अपनी माता को प्रसवजन्य पीड़ा को ही देने के लिए जन्म लिया है और उसने अपने जीवन को गधे तथा चाण्डाल के समान बिता दिया ।।४२।।

जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ।
धिक्तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदन्ति दिवि देवसमाजमुख्याः ॥४३॥

अन्वयः— येन शुकशास्त्र कथा वचनम् किञ्चित् न श्रुतम् स तु पापात्मा जीवन् शवःनिगदितः भुवि भाररूपम्, पशुसमम् तं नरम् धिक् एवं दिवि देवसमाजमुख्या वदन्ति ॥४३॥

अनुवाद— जिसने अपने जीवन में श्रीमद्भागवत का थोड़ा सा भी रसास्वादन नहीं किया वह पापी जीवित शव के समान कहा गया है । पृथिवी पर भार के समान तथा पशु के समान उस मनुष्य को धिक्कार है, इस तरह से स्वर्ग में देवताओं में प्रधान इन्द्र इत्यादि देवता कहा करते हैं ॥४३॥

दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा । कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥४४॥

अन्वयः— लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा कथा दुर्लभा कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येन तु लभ्यते ॥४४॥

अनुवाद— संसार में श्रीमद्भागवत की कथा दुर्लभ है, करोड़ों जन्मों में उत्पन्न पुण्य के ही द्वारा इसकी प्राप्ति होती है ॥४४॥

तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः । दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥४५॥

अन्वयः— हे योगनिधे ! धीमन् तेन सा प्रयत्नतः श्रोतव्या । दिनानाम् नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणम् मतम् ॥४५॥

अनुवाद— हे नारदजी ! आप तो योगनिधि और बुद्धिमान हैं, इस कथा को प्रयत्न पूर्वक सावधान होकर सुनना चाहिए । इसके सुनने में दिनों का नियम नहीं है इसको सदैव सुनते रहना चाहिए ॥४५॥

सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् । अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ॥४६॥

अन्वयः— सत्येन, ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् कलौ अशक्यत्वात् अत्र शुकाज्ञया विशेषः बोध्यः ॥४६॥

अनुवाद— सत्य बोलते हुए तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए इसका सर्वदा श्रवण करना चाहिए । किन्तु कलियुग में ऐसा होना कठिन होने के कारण इसकी विशेष विधि जो शुकदेवजी ने बतायी है उसे जान लेना चाहिए ॥४६॥

मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा । दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥४७॥

अन्वयः— मनोवृत्तिजयश्चैव तथा नियमाचरणम् दीक्षाकर्तुम् अशक्यत्वात् सप्ताह श्रवणम् मतम् ॥४७॥

अनुवाद— कलियुग में बहुत दिनों तक मन को अपने वश में रखना, नियम का पालन करना तथा पुण्य कार्य करने के लिए दीक्षित रहना कठिन है; अतएव इसको एक सप्ताह में ही सुनना चाहिए ॥४७॥

श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् । तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥४८॥

अन्वयः— श्रद्धातः नित्यं श्रवणे माघे यावत् फलम् तावत् हि सप्ताहश्रवणे शुकदेवेन कृतम् ॥४८॥

अनुवाद— नित्य ही श्रद्धा पूर्वक सुनने से या माघ के महीने में सुनने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उतने ही फल को शुकदेवजी ने एक सप्ताह में श्रीमद्भागवत सुनने का बतलाया है ॥४८॥

मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् । कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥४९॥

अन्वयः— पुंसाम् मनसः अजयात्, रोगात् आयुषः क्षयात् कलेर्दोषबहुत्वात् च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥४९॥

अनुवाद— मनुष्यों के मन को वश में नहीं होने के कारण, रोगों की बहुलता के कारण, आयु का क्षय होने के कारण तथा कलिजन्य दोषों की अधिकता होने के कारण एक सप्ताह में सुनने का विधान किया गया है ।।४९।।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना। अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ।।५०।।

अन्वयः— यत् फलम् तपसा, योगेन, समाधिना च नास्ति तत् सर्वं सप्ताहश्रवणेन लभेत् ।

अनुवाद— जिस फल की प्राप्ति तपस्या, योग और समाधि से नहीं होती है उन सबों की सप्ताह भर में श्रीमद्भागवत का श्रवण करने से अनायास ही प्राप्ति हो जाती है ।।५०।।

यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् । तपसो गर्जति प्रोचैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति।।५१।।
योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति। किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति।।५२।।

अन्वयः— सप्ताहः यज्ञात् गर्जति, सप्ताहः व्रतात् गर्जति, तपसः प्रोच्चैः गर्जति नित्यं हि तीर्थात् गर्जति । योगात् सप्ताहः गर्जति ध्यानात् ज्ञानात् च गर्जति, तस्य गर्जनं कि ब्रूमः रे रे गर्जति गर्जति ।।५१-५२।।

अनुवाद— सप्ताह यज्ञ से बढ़कर है, व्रत से बढ़कर है, तप से बढ़कर हैं, तीर्थ से तो बढ़कर है ही। वह योग से ज्ञान और ध्यान से बढ़कर है उसकी इस विशेषता का क्या वर्णन करें ? वह सभी साधनों से बढ़कर है ।।५१-५२।।

शौनक उवाच

साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिधर्मान्विगणय्य साम्प्रतम् ।
निःश्रेयसे भागवतं पुराणं जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ।।५३।।

अन्वयः— एतत् कथानकं साश्चर्यं कथितम् साम्प्रतम् ज्ञानादिधर्मान् विगणय्य योगविदादिसूचकम् भागवतं पुराणम् कुतो जातम् ।।५३।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— आपने यह आश्चर्य जनक कथानक कहा है । यह भागवत पुराण योगवेत्ता ब्रह्माजी के आदि कारण भगवान् नारायण का सूचक है । इस समय यह भागवत पुराण ज्ञान इत्यादि साधनों का तिरस्कार करके मुक्तिप्रदान करने वाला कैसे हो गया ?।।५३।।

सूत उवाच

यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः। एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत्।।५४।।

अन्वयः— यदा कृष्णः धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुम् उद्यतः एकादशं परिश्रुत्य अपि उद्धवः वाक्यम् अब्रवीत् ।।५४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथिवी का परित्याग करके अपने धाम जाने के लिए तैयार होने लगे तो उनके मुखारविन्द से ग्यारहवें स्कन्ध के उपदेश को सुनकर भी उद्धवजी ने कहा ।।५४।।

उद्धव उवाच

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ।
मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह।।५५।।

अन्वयः— गोविन्द त्वं तु भक्तकार्यं विधाय धरां च व्यक्त्वा यास्यसि मत् चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखम् आवह ।।५५।।

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे गोविन्द आप तो भक्तों का कार्य करके तथा पृथिवी को छोड़कर चले जायेंगे, मेरे मन में बहुत बड़ी चिन्ता है उसे सुनकर आप मुझे सुख शान्ति प्रदान करें ।।५५।।

आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ।
तत्सङ्गेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ।।५६।।
तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् । अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन।।५७।।

अन्वयः— अयं घोरः कलिः आगतः पुनः खलाः भविष्यन्ति, यदा तत् सङ्गेन एव सन्तः अपि उग्रतां यास्यन्ति तदा गोरूपा इयं भारवती भूमिः कम् आश्रयेत् । हे कमललोचन त्वत्तः अन्यः त्राता न दृश्यते ।।५६-५७।।

अनुवाद— यह भयङ्कर कलियुग आ रहा है । जब पुनः दुष्ट उत्पन्न हो जायेंगे । उन सबों की सङ्गति के कारण सज्जन पुरुष भी उग्र प्रकृति के हो जायेंगे । उस समय गौ का रूप धारण करने वाली यह भार से युक्त पृथिवी किसके शरण में जायेगी हे कमलनयन ! आपको छोड़कर दूसरा कोई इसका रक्षक नहीं दिखायी देता है ।।५६-५७।।

अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ।
भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ।।५८।।
त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले । निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ।।५९।।

अन्वयः— अतः हे भक्तवत्सल सत्सु दयां कृत्वा मा व्रज, निराकारः चिन्मयः अपि भवान् भक्तार्थं सगुणो जातः। त्वत् वियोगेन ते भक्ताः भूतले कथं स्थास्यन्ति, निर्गणोपासने कष्टम् अतः किञ्चित् विचारय ।।५८-५९।।

अनुवाद— अतएव हे भक्तवत्सल ! सज्जनों पर कृपा करके आप यहाँ से मत जाइये । निराकार एवं ज्ञान स्वरूप भी आप भक्तों के लिए साकार बन गये । निर्गुण की उपासना करना बड़ा कठिन है, अतएव आप कुछ विचार करें ।।५८-५९।।

इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः । भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ।।६०।।

अन्वयः— प्रभासे इति ऊद्धववचः श्रुत्वा हरिः अचिन्तयत् भक्तावलम्बनायापि मया किं विधेयम् इति ।।६०।।

अनुवाद— प्रभास क्षेत्र में इस तरह से उद्धवजी की वाणी को सुनकर श्रीहरि ने विचार किया कि भक्तों के अवलम्बन के लिए मुझे क्या करना चाहिए ?।।६०।।

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् । तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ।।६१।।
तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः । सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ।।६२।।

अन्वयः— अयं तिरोधाय श्रीमद्भागवतार्णवम् प्रविष्टः । स्वकीयं यत्तेजो भवेत् तत् च भागवते अदधात् । तेन इयं हरेः प्रत्यक्षा वाङ्मयी मूर्तिः सेवनात् श्रवणात् पाठात् दर्शनात् पापनाशिनी वर्तते ।।६१-६२।।

अनुवाद— वे श्रीभगवान् अन्तर्धान होकर श्रीमद्भागवत रूपी महासमुद्र में प्रवेश कर गये और अपनी सारी शक्ति का श्रीमद्भागवत में आधान कर दिए । अतएव यह श्रीहरि की प्रत्यक्ष और शब्दमयी मूर्ति सेवन करने, सुनने, पाठ करने तथा दर्शन करने से पापों का विनाश करने वाली है ।।६१-६२।।

सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम्। साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥६३॥

अन्वयः— तेन सप्ताहश्रवणं सर्वेभ्य अपि अधिकं कृतम् । कलौ साधनानि तिरस्कृत्य अयम् धर्म ईरितः ॥६३॥

अनुवाद— इसीलिए इसका एक सप्ताह में श्रवण सबसे बढ़कर कहा गया है । कलियुग में दूसरे साधनों को छोड़कर इसी को प्रधान धर्म कहा गया है ॥६३॥

दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च । कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥६४॥

अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ।
कथं त्याज्या भवेत्पुंभिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ॥६५॥

अन्वयः— कलौ दुःख दारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय, कामक्रोधजयार्थ च अयं धर्मः ईरितः । अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुःस्त्यजा पुम्भिःकथं त्याज्या भवेत् अतः सप्ताहः प्रकीर्तितः ॥६४-६५॥

अनुवाद— कलियुग में दुःख, दारिद्र्य दौर्भाग्य तथा पापों का प्रक्षालन करने के लिए एवं काम एवं क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए इसको सबसे बड़ा धर्म कहा गया है । अन्यथा श्रीभगवान् की माया जब देवताओं के भी लिए भी कठिनाई से त्यागने योग्य है तो मनुष्य उसका परित्याग कैसे कर सकते हैं ? अतएव ही सप्ताहश्रवण का विधान किया गया है ॥६४-६५॥

सूत उवाच

एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ।
आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संश्रृणु शौनक त्वम् ॥६६॥

अन्वयः— हे शौनक एवम् सभायाम् ऋषिभिः नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने तदानीमेकं आश्चर्यम् समभूत् तत् उच्यते । त्वम् संश्रुणु ॥६६॥

अनुवाद— हे शौनक ! इस प्रकार से ऋषियों के द्वारा सप्ताह श्रवण रूपी महान् धर्म का प्रकाशन जब किया जा रहा था उसी समय एक आश्चर्य हुआ; उसे मैं बतला रहा हूँ आप सुनें ॥६६॥

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥६७॥

अन्वयः— तौ तरुणौ सुतौ गृहित्वा प्रेमैकरूपा भक्तिः श्रीकृष्ण, गोविन्द, हरे, मुरारे, नाथ इति नामानि मुहुः वदन्ती सहसा आविः आसीत् ॥६७॥

अनुवाद— अपने उन ज्ञान और वैराग्य नामक दोनों पुत्रों को लेकर प्रेम स्वरूपा, भक्ति, हे श्रीकृष्ण, हे गोविन्द, हे हरे, हे मुरारे, हे नाथ इन श्रीभगवान् के नामों का बार-बार उच्चारण करती हुयी प्रकट हो गयी ॥६७॥

तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ।
कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥६८॥

अन्वयः— सुचारुवेषां भागवतार्थभूषां चागतां मुनीनाम् मध्ये, इयं कथं प्रविष्टा इति तर्कयन्तः सदस्याः तां ददृशुः ॥६८॥

अनुवाद— सुन्दर वेष वाली भागवत के अर्थ रूपी भूषणों से भूषित यह भक्ति मुनियों के बीच मे कैसे आ गयी इस तरह से तर्क करते हुए सदस्यों ने भक्ति देवी को देखा ॥६८॥

ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताधुनेयम् ।
एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥६९॥

अन्वयः— तदानीम् कुमारा वचनम् ऊचुः अधुना इयम् कथार्थतः निष्पतिता एवम् गिरः नम्रा सा निशम्य सनत्कुमारम् निजगाद ॥६९॥

अनुवाद— उस समय सनाकादिक ऋषियों ने कहा, ये भक्तिदेवी इस समय कथा के अर्थ से प्रकट हुयी है । उनके इस वचन को सुनकर भक्ति देवी ने अपने पुत्रों के साथ सनत्कुमार महर्षि से कहा ॥६९॥

भक्तिरुवाच

भवद्भिरद्यैव कृताऽस्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन ।
क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥७०॥

अन्वयः— हे ब्राह्मा कलिप्रणष्टापि अहम् भवद्भिः कथारसेन अद्यैव पुष्टा कृता अस्मि अधुना अहं क्व तिष्ठामि इति ब्रुबन्तु । ताम् ते इदं गिरम् ऊचिरे ॥७०॥

अनुवाद— हे ब्रह्म जी के पुत्रों ! सनकादिकों यद्यपि मैं कलियुग के द्वारा विनष्टप्राय ही हो गयी थी; किन्तु मैं आज ही आपलोगों के द्वारा कथा रस के द्वारा पुष्ट बना दी गयी हूँ । आपलोग बतलाएँ मैं कहाँ रहूँ ? इस बात को सुनकर सनकादिक महर्षियों ने भक्ति से कहा ॥७०॥

भक्तेषु गोविन्दस्वरूपकर्त्री प्रेमैकधर्त्री भवरोगहन्त्री ।
सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥७१॥

अन्वयः— भक्तेषु गोविन्दस्वरूपकर्त्री, प्रेमैकधर्त्री, भवरोगहन्त्री सा च त्वम् सुधैर्यसंश्रया वैष्णवमानसानि तिष्ठस्व।।७१।।

अनुवाद— भक्तों को श्रीभगवान् का स्वरूप प्रदान करने वाली, अनन्य प्रेम का सम्पादन करने वाली तथा संसार रूपी रोग को विनष्ट करने वाली तुम धैर्यधारण करके श्रीभगवान् के भक्तों के मन में निवास करो ॥७१॥

ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ।
एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥७२॥

अन्वयः— ततः लोके प्रभवः अपि कलिजा दोषाः त्वां द्रष्टुम् न शक्ताः एवं तदाज्ञाऽवसरेऽपि भक्तिः तदा हरिदासचित्ते निषण्णा ॥७२॥

अनुवाद— ऐसा करने से संसार पर अपना प्रभाव जमाने वाले ये कलियुग के दोष तुमको देख पाने में भी समर्थ नहीं हो पायेंगे । इस तरह से सनकादिकों की आज्ञा पाते ही भक्ति श्रीभगवान् के भक्तों के हृदय में जाकर विराजमान हो गयी ॥७२॥

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥७३॥

अन्वयः— येषां हृदि एका श्रीहरेः भक्तिः निवसति ते निर्धना अपि सकलभुवनमध्ये धन्याः । अतः भक्तिसूत्रोपनद्धः हरिरपि निजलोकम् सर्वथा विहाय तेषां हृदि प्रविशति ॥७३॥

अनुवाद— जिन लोगों के हृदय में केवल श्रीहरि की भक्ति का ही निवास होता है, वे निर्धन भी पुरुष

सम्पूर्ण जगत में धन्य है; क्योंकि भक्ति रूपी डोरी से बँधकर श्रीहरि भी अपना लोक छोड़कर उन भक्त पुरुषों के हृदय में प्रवेश कर जाते हैं ॥७३॥

ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ।
यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥७४॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— भुवि ब्रह्मात्मकस्य भागवताभिधस्य एवं महिमानम् अद्य किमधिकं ब्रूमः यत् संश्रयात् निगदिते सुवक्ता श्रोताऽपि कृष्ण समताम् लभते, अन्यधर्मैः अलम् ॥७४॥

अनुवाद— भूलोक में श्रीभगवान् के शरीरभूत श्रीमद्भागवत की इस प्रकार की अधिक महिमा का वर्णन मैं आज क्या करूँ । इस श्रीमद्भागवत का प्रवचन करने वाला वक्ता और इसका श्रवण करने वाला श्रोता श्रीकृष्ण भगवान के समान अविर्भूत गुणाष्टक स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं । अतएव इससे भिन्न धर्म का सेवन करने का क्या प्रयोजन है ?॥७४॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के उत्तरखण्ड के श्रीमद्भागवत के माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में श्रीभक्ति के कष्ट की निवृत्ति वर्णन नामक तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

चौथा अध्याय

गोकर्णोपाख्यान का प्रारम्भ

सूत उवाच

अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् । निजलोकं परित्यज्य भगवान्भक्तवत्सलः ॥१॥
वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः । काञ्चीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥२॥
त्रिभङ्गललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः । कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥३॥
परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः । आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥४॥

अन्वयः— अथ वैष्णवचित्तेषु अलौकिकीम् भक्तिं दृष्ट्वा, भक्तवत्सलः, वनमाली, घनश्यामः, पीतवासा, मनोहरः, काञ्चीकलाप रुचिरः, लसत् मुकुटकुण्डलः, त्रिभङ्गललितः चारुकौस्तुभेन विराजितः, कोटिन्मथलावण्यः हरिचन्दनचर्चितः, परमानन्दचिन्मूर्तिः, मधुरः मुरलीधरः भगवान् निजलोकं परित्यज्य स्वभक्तानाम् अमलानि मानसानि प्रविवेश ।।१-४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् भक्तों के चित्त में अलौकिक भक्ति को देखकर भक्तवत्सल, वनमाला धारण किए हुए, जल भरे मेध के समान श्याम वर्ण वाले, पीताम्बर धारण किए हुए, देखने में अत्यन्त मनोहर, कटि प्रदेश में करधनी की लड़ियों से मनोहर बने हुए, मुकुट तथा कुण्डल से सुशोभित, त्रिभङ्ग ललित भाव से सम्पन्न, मनोज्ञ कौस्तुभ मणि से सुशोभित, करोड़ों कामदेवों के लावण्य से सम्पन्न तथा हरिचन्दन से चर्चित अङ्गों वाले परमानन्द

स्वरूप ज्ञानमूर्ति, मधुरातिमधुर मुरली को धारण किए हुए श्रीभगवान् अपने लोक का परित्याग करके अपने भक्तों के निर्मल मन में प्रवेश कर गये ॥१-४॥

वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः। तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥५॥

अन्वयः— ये च वैकुण्ठवासिनः उद्धवादयः वैष्णावाः ते तत्कथा श्रवणार्थम् गूढरूपेण संस्थिताः ॥५॥

अनुवाद— वैकुण्ठ में रहने वाले जो उद्धव आदि श्रीभगवान् के भक्त थे वे भी वहाँ पर गुप्त रूप से उस कथा को सुनने के लिए आ गये थे ॥५॥

तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी। चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शङ्खरवोऽप्यभूत् ॥६॥

अन्वयः— तदा जय जयारावः अलौकिकरस पुष्टिः, चूर्णप्रसूनवृष्टिः मुहुशङ्खरवः अपि अभूत् ॥६॥

अनुवाद— जब श्रीभगवान् और उनके भक्त भी कथा सुनने के लिए वहाँ आ गये उस समय जय हो, जय हो कि ध्वनि हुयी। अलौकिक (दिव्य) रस की पुष्टि और बार-बार चूर्णो तथा पुष्पों की वर्षा हुयी और बार-बार शङ्ख की ध्वनि होने लगी ॥६॥

तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः। दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥७॥

अन्वयः— तत्सभासंस्थितानां देह-गेह आत्मविस्मृतिः तन्मयावस्थाम् दृष्ट्वा नारदः वाक्यम् अब्रवीत् ॥७॥

अनुवाद— उस सभा में बैठे हुए सभी लोगों को अपने शरीर, गृह तथा आत्मा का ध्यान ही नहीं रहा। इस तन्मयावस्था को देखकर नारदजी ने कहा ॥७॥

अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ।
मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ॥८॥

अन्वयः— हे मुनीश्वराः ! अद्य मया अयं सप्ताहजन्यः अलौकिकः महिमा विलोकितः अत्र ये मूढाः शठाः पशुपाक्षिणः सर्वे अपि निष्पापतमा भवन्ति ॥८॥

अनुवाद— हे मुनीश्वरों ! आज मैंने सप्ताह श्रवण की इस दिव्य महिमा को देखा। यहाँ रहने वाले जो अज्ञानी तथा शठ पशु पक्षी भी हैं वे सभी अत्यन्त निष्पाप हो गये हैं ॥८॥

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ।
अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥९॥

अन्वयः— अतः ननु कलौ चित्तस्य शोधाय तथैव अघौघ विध्वंसकरं कथा समानम् भुवि किञ्चित् अन्यत् नास्ति ॥९॥

अनुवाद— अतएव निःसन्देह कलियुग में कथा के समान चित्त को शुद्ध बनाने वाला तथा पापों का विनाश करने वाला भूलोक में कोई दूसरा साधन नहीं हैं ॥९॥

के के विशुध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ।
कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ॥१०॥

अन्वयः— कृपालुभिः लोकहितं विचार्य कोऽपि नवीनमार्गः प्रकाशितः। कथामयेन, सप्ताहयज्ञेन के के विशुध्यन्ति इति मह्यं वदन्तु ॥१०॥

अनुवाद— आप सभी कृपालु हैं। आपलोगों ने संसार के कल्याण का विचार कर यह अवर्णनीय नवीन

ही मार्ग प्रकाशित किया है । इस कथा स्वरूप सप्ताहयज्ञ के द्वारा कौन-कौन से लोग पवित्र होते हैं, यह आपलोग मुझे बतलायें ॥१०॥

कुमारा ऊचुः

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥११॥

अन्वयः— ये तु मानवाः सर्वदा पापकृतः सदा दुराचाररताः, विमार्गगाः क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाः कामिनश्च ते कलौ सप्ताहयज्ञेन पुनन्ति ॥११॥

सनकादिकों ने कहा

अनुवाद— जो लोग सदा पाप कर्मों को ही किया करते हैं; दुराचार ही करने में लगे रहते हैं । कुमार्गगामी हैं, क्रोध की अग्नि से सदा जलते रहने वाले, कुटिल और कामपरायण हैं वे सप्ताहयज्ञ के द्वारा पवित्र हो जाते हैं ॥११॥

सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ।
ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१२॥

अन्वयः— ये सत्येन हीनाः, पितृमातृदूषकाः, तृष्णाकुलाः, आश्रमधर्मवर्जिताः च, ये दम्भिकाः, मत्सरिणः, हिंसका अपि ते कलौ सप्ताहयज्ञेन पुनन्ति ।

अनुवाद— सदा असत्य बोलने वाले, माता-पिता की निन्दा करने वाले, तृष्णा (लालच) के चलते व्याकुल जो लोग अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करते हैं दूसरों की उन्नति को देखकर जलने वाले तथा दूसरों को दुःख देने वाले जो लोग हैं वे भी कलियुग में सप्ताह यज्ञ के द्वारा पवित्र हो जाते हैं ॥१२॥

पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१३॥

अन्वयः— पञ्चोग्रपापाः छलछद्मकारिणः, क्रूरा, पिशाचा इव निर्दयाः च ये ब्रह्मस्वपुष्टाः, व्यभिचारकारिणः ते कलौ युगे सप्ताहयज्ञेन पुनन्ति ॥१३॥

अनुवाद— जो लोग मदिरा पान, ब्रह्महत्या, सुवर्ण की चोरी, गुरु की स्त्री के साथ सहगमन और विश्वासघात इन पाँचों उग्र पापों के करने वाले हैं, छल-छद्म करते हैं, क्रूर तथा पिशाचों के समान निर्दय हैं, ब्राह्मणों की सम्पत्ति से पुष्ट होने वाले तथा व्यभिचारी हैं, वे कलियुग में सप्ताहयज्ञ से पवित्र होते हैं ॥१३॥

कायेन वाचा मनसाऽपि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ।
परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१४॥

अन्वयः— ये शठाः हठेन नित्यं कायेन, वाचा, मनसा, अपि पातकं कुर्वन्ति, परस्वपुष्टाः मलिनाः, दुराशयाः, ते कलौ युगे सप्ताहयज्ञेन पुनन्ति ॥१४॥

अनुवाद— जो दुष्ट आग्रह पूर्वक सदैव शरीर, वाणी तथा मन से भी पाप ही करते हैं, दूसरों की सम्पत्ति से पुष्ट होते हैं, मलिन मन वाले तथा दुष्टहृदय वाले हैं, वे भी कलियुग में सप्ताहयज्ञ से पवित्र हो जाते हैं ॥१४॥

अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥१५॥

अन्वयः— अत्र ते पुरातनम् इतिहासम् कीर्तयिष्यामः यस्य श्रवणेन पापहानिः प्रजायते ॥१५॥

अनुवाद— यहाँ पर हम आपको एक पुराना इतिहास सुनाते है, उसके सुन लेने से पाप का नाश होता हैं ॥१५॥

तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् । यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥१६॥

अन्वयः— पूर्वम् तुङ्गभद्रातटे उत्तमम् पत्तनम् अभूत् यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मपरायणाः (आसन्) ॥१६॥

अनुवाद— तुङ्गभद्रा नदी के तट पर एक उत्तम नगर था । वहाँ के सभी लोग अपने वर्णाश्रम के अनुसार सत्यभाषण करते थे और सत्कर्म परायण थे ॥१६॥

आत्मदेवः पुरे तस्मिन्सर्ववेदविशारदः । श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥१७॥

अन्वयः— तस्मिन् पुरे सर्ववेदविशारदः श्रौतस्मार्तेषु निष्णातः द्वितीयः भास्कर इव आत्मदेव (आसीत्) ॥१७॥

अनुवाद— उस नगर में सभी वेदों के विशेषज्ञ, श्रौत तथा स्मार्त कर्मों के करने में निपुण, दूसरे सूर्य के समान आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहते थे ॥१७॥

भिक्षुको वित्तवान् लोके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता ।
स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा॥१८॥

लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका । शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥१९॥

अन्वयः— लोके वित्तवान् भिक्षुकः सः तत् प्रिया धुन्धुली, सुन्दरी, सुकुलोद्भवा, नित्यं स्ववाक्यस्थापिका, लोकवार्तारता, क्रूरा, प्रायशः बहुजल्पिका, गृहकृत्येषु शूरा, कृपणा कलहप्रिया च स्मृता ॥१८-१९॥

अनुवाद— वे धनी होने पर भिक्षा वृत्ति से रहने वाले थे । उन की पत्नी धुन्धुली कुलीन वंश में उत्पन्न तथा सुन्दरी थी । वह सदा अपनी ही बात पर अड़ी रहती थी । वह सांसारिक बातों को ही करने में लगी रहती थी; वह क्रूर स्वभाव की थी तथा बहुत अधिक बोलने वाली थी । घर के कार्यों को करने में वह निपुण थी । वह कृपण और कलहप्रिय थी ॥१८-१९॥

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्यो रममाणयोः । अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम्॥२०॥

अन्वयः— एवं प्रेम्णा निवसतो रममाणयोः तयोः दम्पत्योः अर्थाः कामाः गृहादिकम् सुखाय न आसन् ॥२०॥

अनुवाद— इस प्रकार से प्रेमपूर्वक रहकर विहार करते हुए उन दोनों पतिपत्नी के पास भोग की सामग्री प्रभूत मात्रा में थी; किन्तु घर आदि से उन दोनों को सुख नहीं मिलता था ॥२०॥

पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां सन्तानहेतवे । गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा॥२१॥

अन्वयः— ताभ्याम् पश्चात् सन्तानहेतवे दीनेभ्यः गो-भू-हिरण्य-वासांसि यच्छतः धर्माः समारब्धाः ॥२१॥

अनुवाद— उन दोनों ने बाद में चलकर सन्तान की प्राप्ति के लिए दीन-दुखियों को गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र देते हुए पुण्य कर्म करना प्रारम्भ किया ॥२१॥

धनार्धं धर्ममात्रेण ताभ्यां नीतं तथापि च । न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम्॥२२॥

अन्वयः— ताभ्यां धनार्द्धं धर्ममार्गे नीतं तथापि न पुत्रः नापि वा पुत्री ततः भृशम् चिन्तातुरः ॥२२॥

अनुवाद— उन दोनों लोगों ने धन का आधा भाग धर्म में व्यय कर दिया फिर भी न तो पुत्र की प्राप्ति हो सकी और न पुत्री की । उसके पश्चात् वे बहुत अधिक चिन्तित हो गये ॥२२॥

एकदा स द्विजो दुःखाद्गृहं त्यक्त्वा वनं गतः। मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥२३॥

अन्वयः— एकदा स द्विजः दुःखात् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः । मध्याह्ने तृषितः जातः सन् तडागं समुपेयिवान् ॥२३॥

अनुवाद— एक दिन वे ब्राह्मण दुःख के कारण गृह छोड़कर वन में चले गये । दोपहर की बेला में जब उनको प्यास लगी तो वे एक तलाब पर आये ॥२३॥

पीत्वा जलं निषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः। मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥२४॥

अन्वयः— प्रजादुःखेन कर्शितः तु जलम् पीत्वा निषण्णः । तत्रैव मुहूर्तादपि कश्चित् संन्यासी आगतः ॥२४॥

अनुवाद— सन्तान के दुःख से दुःखी वे ब्राह्मण जल पीकर वहीं बैठ गये वहीं पर दो घड़ी के पश्चात् एक संन्यासी आये ॥२४॥

दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् । नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन्संस्थितः पुरः॥२५॥

अन्वयः— तम् तु पीतजलं दृष्ट्वा विप्रः तदन्तिकम् यातः । तस्य पादयोः नत्वा निःश्वसन् पुरः संस्थितः ॥२५॥

अनुवाद— उन संन्यासी को जल पी लिए हुए देखा तो ब्राह्मण उनके सन्निकट गये और उनके चरणों में प्रणाम करके लम्बी श्वास लेते हुए उनके सामने बैठ गये ॥२५॥

यतिरुवाच

कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी। वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम्॥२६॥

अन्वयः— हे विप्र ! त्वं कथम् रोदिषि ते बलीयसी चिन्ता का ? त्वम् सत्वरं स्वस्य दुःखस्य कारणम् मह्यम् वद ॥२६॥

संन्यासी ने कहा

अनुवाद— हे विप्र ! आप क्यों रो रहे हैं ? आपको कौन सी बलवान् चिन्ता है । आप अपने दुःख का कारण मुझे शीघ्र बतलाइये ॥२६॥

ब्राह्मण उवाच

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् । मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते॥२७॥

अन्वयः— ऋषे ! पूर्वपापेन संचितं दुःखं किं ब्रवीमि । मदीयाः पूर्वजा कवोषणं पयः उपभुञ्जते ॥२७॥

ब्राह्मण ने कहा

अनुवाद— हे ऋषे ! मैं अपने पूर्वजन्म में किए गये पापों के फलस्वरूप दुःख के विषय में क्या कहूँ। मेरे पूर्वज अपने श्वास से गर्म करके जल को पीते हैं ॥२७॥

मद्दत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः। प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः॥२८॥

अन्वयः— मद्दत्तम् देवा द्विजातयः प्रीत्या नैव गृह्णन्ति । अहम् प्रजादुःखेन शून्यः इह प्राणान् त्यक्तुम् आगतः ॥२८॥

अनुवाद— मेरे द्वारा प्रदत्त किसी भी वस्तु को देवता तथा अतिथिगण प्रेमपूर्वक नही ग्रहण करते हैं । मैं प्रजा के दुःख के कारण इतना दुःखी हूँ कि मुझे सब कुछ सूना-सूना दिखायी पड़ता है । मैं यहाँ पर अपने प्राणों का त्याग करने के लिए आया हूँ ॥२८॥

धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना। धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं सन्ततिं विना॥२९॥

अन्वयः— प्रजाहीनं जीवितं धिक्, प्रजाहीनं गृहं धिक् । अनपत्यस्य धनं धिक् सन्ततिम् बिना कुलं धिक् ।।२९।।

अनुवाद— सन्तान से रहित जीवन को धिक्कार है । सन्तान से रहित गृह को धिक्कार है । सन्तान रहित धन को धिक्कार है और सन्तान रहित कुल को धिक्कार है ।।२९।।

पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् ।
यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥३०॥

अन्वयः— मया या धेनुः पाल्यते सा सर्वथा वन्ध्या भवेत् । मया रोपितः यः वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वम् आश्रयेत् ।।३०।।

अनुवाद— मैं जिस गौ को पालता हूँ वह भी पूर्ण रूप से वन्ध्या हो जाती है । जिस वृक्ष को मैं रोपता हूँ वह भी वन्ध्या हो जाता है ।।३०।।

यत्फलं मद्गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति। निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे॥३१॥

अन्वयः— मद्गृहम् यत् फलम् आयातम् तत् च शीघ्रं विनश्यति निर्भाग्यस्य अनपत्यस्य मे जीवितेन प्रयोजनम् किम् ।।३१।।

अनुवाद— मेरे घर जो भी फल आता है वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है । अतएव नि:सन्तान तथा मेरे जीने से क्या लाभ है ।।३१।।

इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वे दुःखपीडितः। तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी ॥३२॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा दुःखपीडितः तत्पार्श्वं उच्चैः रुरोद । तदा तस्य यतेः चित्ते गरीयसी करुणा अभूत् ।।३२।।

अनुवाद— इस तरह से कहकर दु:ख से दु:खी वे ब्राह्मण उन संन्यासी के सन्निकट में जोर-जोर से रोने लगे । उस समय उन संन्यासी के मन में बहुत अधिक दया आ गयी ।।३२।।

तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान्। सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥३३॥

अन्वयः— योगवान् यतिः तद्भालाक्षरमालाम् वाचयामास सर्वं ज्ञात्वा पश्चात् विप्रम् सविस्तरम् ऊचे ।।३३।।

अनुवाद— वे यति योगी थे । उन्होंने उन ब्राह्मण के ललाट के अक्षरों को बाँच लिया और सारी बातें जनने के पश्चात् उन्होंने ब्राह्मण से विस्तार पूर्वक कहा ।।३३।।

यतिरुवाच

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः। विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम्॥३४॥

अन्वयः— प्रजारूपम् अज्ञानम् मुञ्च, कर्मणः गति बलिष्ठा । विवेकम् समासाद्य संसारवासनाम् त्यज ।।३४।।

अनुवाद— हे ब्राह्मणदेव ! आप संन्तान की प्राप्ति का मोह छोड़ दें । कर्मों की गति अत्यन्त बलवती होती है । आप विवेक को अपनायें और संसार की वासना का परित्याग कर दें ।।३४।।

शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम्। सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च॥३५॥

अन्वयः— हे विप्र ! शृणु मया अद्य ते प्रारब्धं विलोकितम् सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ।।३५।।

अनुवाद— हे विप्र ! आप सुनें । मैंने आज आपके प्रारब्ध को देख लिया है । सात जन्मों तक आपकी कोई भी सन्तान किसी भी प्रकार से नहीं होने वाली है ।।३५।।

संतते: सगरो दु:खमवापाङ्ग: पुरा तथा। रे मुञ्चाद्य कुटुम्बाशां संन्यासे सर्वथा सुखम्।।३६।।

अन्वय:— पुरा सगर: तथा अङ्ग सन्तते: दुखम् अवाप। रे अद्य कुटुम्बाशां मुञ्च। संन्यासे सर्वथा सुखम् ।।३६।।

अनुवाद— प्राचीन काल में राजा सागर और राजा अङ्ग दोनों सन्तान से दु:ख ही प्राप्त किए। अब आप कुटुम्ब की आशा छोड़ दें। संन्यास में ही सब प्रकार का सुख हैं ।।३६।।

ब्राह्मण उवाच

विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि। नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छित:।।३७।।

अन्वय:— विवेकेन किं भवेत्, बलादपि मे पुत्रं देहि नो चेत् त्वदग्रे शोकमूर्छित: प्राणान् त्यजामि ।।३७।।

ब्राह्मण ने कहा

अनुवाद— विवेक से क्या होने वाला है ? बल पूर्वक आप मुझे पुत्र दें नहीं तो मैं आपके सामने ही शोक से मूर्छित होकर अपने प्राणों का परित्याग कर देता हूँ ।।३७।।

पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यास: शुष्क एव हि। गृहस्थ: सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वित: ।।३८।।

अन्वय:— पुत्रादिसुखहीन: अयम् संन्यास: हि शुष्क:। पुत्रपौत्रसमन्वित: गृहस्थ: लोके सरस: ।।३८।।

अनुवाद— पुत्र पौत्र आदि के सुख से रहित यह संन्यास तो नीरस है। पुत्रों तथा पौत्रों से युक्त गृहस्थाश्रम ही लोक मे सरस है ।।३८।।

इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधन:। चित्रकेतुर्गत: कष्टं विधिलेखविमार्जनात्।।३९।।

अन्वय:— इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा स तपोधन: प्राब्रवीत्। विधिलेख विमार्जनात् चित्रकेतु: कष्टं गत: ।।३९।।

अनुवाद— इस तरह से ब्राह्मण के आग्रह को देखकर वे तपस्वी कहे। ब्रह्मा के लेख को मिटाने के कारण राजा चित्रकेतु को बड़ा ही कष्ट उठाना पड़ा ।।३९।।

न यास्यासि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यम:। अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम्।।४०।।

अन्वय:— दैवहतोद्यम: यथा पुत्रात् सुखं न यास्यसि। हठेन युक्त: असि, अत: अर्थिनम् ते अहम् किं वदमि ?।।४०।।

अनुवाद— जिसके प्रयास को भाग्य ने कुचल दिया हो उसको और सुख नहीं मिलता है, उसी तरह तुमको पुत्र से सुख नहीं मिलेगा। तुम हठ पकड़ रखे हो तुम याचक हो अतएव तुमको मैं क्या कहूँ ।।४०।।

तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान्। इदं भक्षय पत्न्या त्वं तत: पुत्रो भविष्यति।।४१।।

अन्वय:— तस्य आग्रहम् समालोक्य स एकम् फलम् दत्तवान्। त्वम् इदम् पत्न्या भक्षय, तत: ते पुत्रो भविष्यति।।४१।।

अनुवाद— उस ब्राह्मण के आग्रह को देखकर उन्होंने एक फल ब्राह्मण को दिया और कहा इस फल को आप अपनी पत्नी को खिला दें, उससे आपको पुत्र की प्राप्ति होगी ।।४१।।

सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम्। वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मल: ।।४२।।

अन्वय:— स्त्रिया तु एकवर्षावधि सत्यं शौचं, दया, दानम् एकभक्तम् भोजनम् कार्यम् तेन पुत्र: अतिनिर्मल: (भविष्यति) ।।४२।।

अनुवाद— आपकी पत्नी को एक वर्ष पर्यन्त सत्य बोलना चाहिए, पवित्र धर्म का पालन करना चाहिए, दया करनी चाहिए, दान देना चाहिए एवं एक शाम भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से पुत्र शुद्ध स्वभाव वाला होगा ॥४२॥

एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः। पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित्॥४३॥

अन्वयः— एवम् उक्त्वा योगी ययौ विप्रस्तु गृहम् आगतः पत्न्याः पाणौ फलं दत्वा स्वयं तु कुत्रचित् यातः ॥४३॥

अनुवाद— इस तरह से कहकर योगी चले गये और ब्राह्मण भी अपने घर आये। अपनी पत्नी को उस फल को प्रदान करके वे स्वयं कहीं चले गये ॥४३॥

तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह। अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये॥४४॥

अन्वयः— तस्य कुटिला तरुणी सख्यग्रे रुरोद ह। अहो ममचिन्ता उत्पन्ना अहं च फलं न भक्षये ॥४४॥

अनुवाद— उस ब्राह्मण की कुटिल स्वभाव वाली पत्नी अपने सखी के सामने रो-रोकर कहने लगी, मुझे तो बहुत अधिक चिन्ता उत्पन्न हो गयी है, मैं फल को नहीं खाऊँगी ॥४४॥

फलभक्षेण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता। स्वल्पभक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत्॥४५॥

अन्वयः— फलभक्षेण गर्भः स्यात् गर्भेण उदरवृद्धिता भवेत् ततः अल्पभक्षम् अशक्तिः गृहकार्यं कथं भवेत् ॥४५॥

अनुवाद— फल के खाने से गर्भ रह जायेगा गर्भ हो जाने पर पेट बढ़ जायेगा। उसके कारण भोजन कम हो जायेगा इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायेगी, फिर घर का काम कैसे कर पाऊँगी ?॥४५॥

दैवाद्धाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम्। शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत्॥४६॥

अन्वयः— दैवाद् यदि ग्रामे धाटी व्रजेत् गर्भिणी कथम् पलायेत् शुकवद् गर्भः निवसेत्तं कुक्षेः कथम् उत्सृजेत्॥४६॥

अनुवाद— यदि दैववशात् ग्राम में डाकुओं का आक्रमण हो जाय तो फिर गर्भिणी स्त्री कैसे भग सकेगी? यदि शुकदेवजी के समान वह गर्भ पेट में ही रह जाय तो फिर उसके पेट से कैसे निकाल सकूंगी ?॥४६॥

तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत्। प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे॥४७॥

अन्वयः— चेत् गर्भः तिर्यक् आगतः तदा तु मे मरणम् भवेत्। प्रसूतौ दारणम् दुःखम् सुकुमारी (अहं) कथं सहे ॥४७॥

अनुवाद— यदि कहीं गर्भ तिरछा हो गया तब तो मेरी मृत्यु ही हो जायेगी। प्रसवकाल में होने वाले भयङ्कर कष्ट को सुकुमारी मैं कैसे सह पाऊँगी ?॥४७॥

मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा। सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते॥४८॥

अन्वयः— तदा मयि मन्दायाम् ननन्दा सर्वस्वं हरेत्। सः सत्यशौचादि नियमः दुराराध्यः दृश्यते ॥४८॥

अनुवाद— मेरे दुर्बल हो जाने पर मेरी ननद मेरा सबकुछ चुरा लेगी और सत्यभाषण तथा पावित्र्य पालन आदि का जो नियम है उसका पालन करना तो अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है ॥४८॥

लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते। वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः॥४९॥

अन्वयः— प्रसूतायाः च लालने पालने दुःखं वर्तते। वन्ध्या वा विधवा च नारी सुखिनी इति मे मतिः ॥४९॥

अनुवाद— पुत्र जनन करने वाली नारी को बच्चा के लालन-पालन में भी कष्ट होता है। मेरे मतानुसार तो बन्ध्या या विधवा नारी ही सुखी होती है ॥४९॥

एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् । पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम्॥५०॥

अन्वयः— एवं कुतर्कयोगेन तया फलं न भक्षितम् । पत्या भुक्तम् (इति) पृष्टम् च भुक्तम् इति च ईरितम् ॥५०॥

अनुवाद— इस तरह से कुतर्क करने के कारण उसने फल को नहीं खाया पति के द्वारा यह पूछने पर कि क्या फल को खा लिया ? तो उसने कहा खा लिया ॥५०॥

एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽऽगता । तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे ॥५१॥

अन्वयः— एकदा तस्याः भगिनी तद् गृहे स्वेच्छया आगता तदग्रे सर्वं कथितम् इयं हि मे महती चिन्ता ॥५१॥

अनुवाद— एक दिन उसकी बहिन अपनी स्वेच्छा से उसके घर आयी, तब उसने उसके सामने उन सारी बातों को सुनाकर कहा कि 'यह मुझको बहुत बड़ी चिन्ता हैं ।'॥५१॥

दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् । साब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः॥५२॥

अन्वयः— अनुजे तेन दुःखेन हि (अहं) दुर्बला, किम् करवाणि ? सा मम गर्भः अस्ति इति अब्रवीत्, तम् प्रसूतितः दास्यामि ॥५२॥

अनुवाद— हे छोटी बहिन ! मैं इसी दुःख के कारण दुःखी हूँ । मैं क्या करूँ । इस पर उसकी छोटी बहिन ने कहा मुझे गर्भ है, मैं उसे प्रसव होते ही तुम्हें दे दूँगी ॥५२॥

तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् । वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम्॥५३॥

अन्वयः— तावत् कालं सगर्भा इव गृहे गुप्ता सुखम् तिष्ठ । त्वम् मत् पतेः वित्तम् यच्छ, सः ते बलकम् दास्यति ॥५३॥

अनुवाद— उतने दिन तक तुम गर्भिणी के समान घर में छिपकर सुखपूर्वक रहो । तुम मेरे पति को धन दे देना, वे तुमको बालक दे देंगे ॥५३॥

षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति। तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे॥५४॥

अन्वयः— लोकः, षाण्मासिकः बालः मृत इति वदिष्यति । ते गृहे नित्यम् आगत्य तं बालं पोषयिष्यामि ॥५४॥

अनुवाद— मैं ऐसा उपाय करूँगी कि लोग यही कहेंगे कि इसका छह महीने का होकर बालक मर गया। मैं प्रतिदिन तुम्हारे घर आकर बालक का पालन पोषण कर दिया करूँगी ॥५४॥

फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु साम्प्रतम्। तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः॥५५॥

अन्वयः— साम्प्रतम् त्वम् परीक्षार्थम् धेन्वै फलम् अर्पय स्त्री स्वभावतः (सा) तदा सर्वं तत् तथैव आचरितम् ॥५५॥

अनुवाद— इस समय तो तुम परीक्षा करने के लिए फल को गौ को खिला दो । स्त्री का स्वभाव होने के कारण उसने उन सारी बातों को उसी तरह किया जैसा कि उसकी बहिन ने कहा था ॥५५॥

अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा । आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ॥५६॥

अन्वयः— अथ कालेन (यदा) सा नारी बालकं प्रसूता तदा जनकः बालम् आनीय रहस्ये धुन्धुलीम् ददौ ॥५६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् समयानुसार उस नारी ने जब बालक को जन्म दिया, उस समय उसके पिता ने बालक को लाकर अकेले में धुन्धुली को दे दिया ॥५६॥

तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः । लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥५७॥

अन्वयः— तया च भर्त्रे कथितम् (यत्) सुखम् अर्भकः प्रसूतः । आत्मदेवप्रजोदयात् लोकस्य सुखम् उत्पन्नम् ॥५७॥

अनुवाद— धुन्धुली ने अपने पति से कह दिया कि बालक सुख पूर्वक उत्पन्न हो गया । आत्मदेव के सन्तान की उत्पत्ति को सुनकर लोगों को बहुत प्रसन्नता हुयीं ।।५७।।

ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च । गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्वारे मङ्गलं बहु।।५८।।

अन्वयः— जातकर्म च विधाय द्विजातिभ्यः दानं ददौ, तद् द्वारे गीतवादित्र घोषः बहु मङ्गलम् च अभूत् ।।५८।।

अनुवाद— उन्होंने बालक का जातकर्म करके ब्राह्मणों को धन दान दिया, उनके द्वार पर गाना बजाना तथा अनेक प्रकार के मङ्गल हुए ।।५८।।

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम । अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम्।।५९।।

अन्वयः— (सा) भर्तुः अग्रे वाक्यम् अब्रवीत् (यत्) मम कुचे स्तन्यं नास्ति, निर्दुग्धा (अहम्) अन्य स्तन्येन बालकम् कथं पुष्णामि ।।५९।।

अनुवाद— धुन्धुली ने पति से कहा कि मेरे स्तनों में दूध नहीं है । दूसरे जीवों के दूध से बालक को कैसे पोषूंगी ?।।५९।।

मत्स्वसायाः प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते। तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति।।६०।।

अन्वयः— प्रसूतायाः मत् स्वसुः च बालः तु मृतो वर्तते । ताम् आकार्य गृहे रक्ष ते अर्भं सा पोषयिष्यति ।।६०।।

अनुवाद— मेरी बहिन को अभी बालक हुआ था किन्तु मर गया है, उसको बुलाकर आप अपने घर में रखें, वह आपके बालक का पालन-पोषण कर देगी ।।६०।।

पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे । पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम्।।६१।।

अन्वयः— पुत्ररक्षणहेतवे पतिना तत् सर्वं कृतम् मात्रा पुत्रस्य नाम धुन्धुकारी इति प्रतिष्ठितम् ।।६१।।

अनुवाद— पुत्र की रक्षा के लिए धुन्धुली ने जो-जो कहा आत्मदेव ने वह सब कुछ किया । माता ने पुत्र का नाम धुन्धुकारी रखा ।।६१।।

त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् । सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम्।।६२।।

अन्वयः— अथ च त्रिमासे निर्गते सा धेनुः सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् अर्भकम् सुषुवे ।।६२।।

अनुवाद— उसके तीन मास बीत जाने पर उस गौ ने सर्वाङ्ग सुन्दर दिव्य निर्मल तथा सुवर्ण के समान कान्ति वाले मनुष्य बालक को जन्म दिया ।।६२।।

दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान्स्वयमादधे । मत्त्वाश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ।।६३।।

अन्वयः— विप्रः तु दृष्ट्वा प्रसन्नः सन् स्वयम् संस्कारान् आदधे । सर्वे जनाः आश्चर्यं मत्त्वा दिदृक्षार्थम् समागताः ।।६३।।

अनुवाद— उसे देखकर आत्मदेव को बड़ी प्रसन्नता हुयी और उन्होंने स्वयम् उस बालक के सम्पूर्ण संस्कारों को सम्पन्न किया । इस बात को सुनकर सबलोगों ने आश्चर्य माना और उस बालक को देखने के लिए सबलोग आये ।।६३।।

भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत । धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम्।।६४।।

अन्वयः— (ते परस्परं वार्तां चक्रुः) पश्यत अधुना आत्मदेवस्य भाग्योदयः जातः, धेन्वा देवरूपी बालः प्रसूतः इति तु कौतुकम् ।।६४।।

अनुवाद— वे आपस में कहने लगे कि देखो न, इस समय आत्मदेव का भाग्योदय हो गया है, गौ ने भी देवता के समान सुन्दर बालक को जन्म दिया है, यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥६४॥

न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः । गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत्॥६५॥

अन्वयः— विधियोगतः तद् रहस्यम् केनापि न ज्ञातम् तम् सुतम् च गोकर्णम् दृष्ट्वा गोकर्णम् नाम अकरोत् ॥६५॥

अनुवाद— विधिवशात् इस रहस्य को कोई भी नहीं जान सका और उस बालक के कान को गौ के समान देखकर आत्मदेव ने उसका नाम गोकर्ण रखा ॥६५॥

कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ। गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः॥६६॥

अन्वयः— कियत् कालेन तौ उभौ तनयौ तरुणौ जातौ । गोकर्णः पण्डितः ज्ञानी धुन्धुकारी च महाखलः ॥६६॥

अनुवाद— कुछ समय में आत्मदेव के वे दोनों पुत्र युवा हो गये । गोकर्ण तो पण्डित और ज्ञानी हुए और धुन्धुकारी बड़ा दुष्ट हुआ ॥६६॥

स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधवर्धितः। दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनः॥६७॥
चोरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः। लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत्॥६८॥

अन्वयः— (धुन्धुकारी) स्नानशौच क्रियाहीनः दुर्भक्षी क्रोध वर्धितः । दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनम् । चौरः स्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः, अर्भकान् लालनाय धृत्वा सद्यः कूपे, न्यपातयत् ।

अनुवाद— स्नान करना, पवित्र्य का पालन करना तथा ब्राह्मणोचित क्रियाओं को करना इन सबों का वह नाम भी नहीं जानता था । जिन वस्तुओं को नहीं खाना चाहिए उन वस्तुओं को खा लेता था । वह अत्यधिक क्रोध करता था । जिन दानों को नहीं लेना चाहिए उन दानों को भी वह ले लेता था । तथा वह हाथ से मूर्दे को छूकर भी उसी हाथ से खा लेता था । वह चोरी करने का काम करता था, सभी लोगों से द्वेष करता था तथा दूसरों के घर में आग लगा देता था । वह खेलाने के लिए बच्चों के लेकर शीघ्र ही उन सबों को कुएँ में डाल देता था ॥६७-६८॥

हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः । चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्च सङ्गतः ॥६९॥

अन्वयः— हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानाम् प्रपीडकः नित्यं चाण्डालाभिरतः पाशहस्तः श्वसंगतः ॥६९॥

अनुवाद— वह हिंसा करता था, सदा अपने हाथ में शस्त्रों को धारण करता था । दीन जनों और अन्धों को वह बहुत अधिक दुःख देता था । वह चाण्डालों से प्रेम करता था अपने हाथ में पाश लिए रहता था तथा शिकार करने के लिए कुत्तों को अपने साथ रखता था ॥६९॥

तेन वेश्याकुसङ्गेन पैत्र्यं वित्तं तु नाशितम्। एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत्॥७०॥

अन्वयः— वेश्याकुसङ्गेन तेन पित्र्यं वित्तम् तु नाशितम् । एकदा पितरौ ताड्य स्वयम् पात्राणि आहरत् ॥७०॥

अनुवाद— वेश्या के कुसङ्ग के कारण उसने अपने पिता की सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी । एक दिन अपने माता-पिता को पीटकर वह घर के सारे वर्तनों को उठा ले गया ॥७१॥

तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह। वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥७१॥

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ।
प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥७२॥

अन्वयः— धनहीनः कृपणः तत् पिता उच्चै रुरोद । बन्ध्यत्वं समीचीनम् कुपुत्रः दुःखदायकः । अहं क्व तिष्ठामि, क्व गच्छामि मे दुःखम् कः व्यपोहयेत् । हा मम कष्टं संस्थितम्, प्रणान् दुःखेन त्यजामि ।।७१-७२।।

अनुवाद— सारी सम्पत्ति के विनष्ट हो जाने पर निर्धन तथा कृपण उसके पिता जोर-जोर से रोने लगे । वे कहते थे वन्ध्या होना ठीक है किन्तु कुपुत्र तो केवल दुःख ही देता है । मैं कहाँ रहूँ ? कहाँ चला जाऊँ ? मेरे दुःख को कौन दूर करेगा ? अब तो मुझे कष्ट ही भोगना है । मैं कष्ट से प्राणों का परित्याग कर दूँगा ।।७१-७२।।

तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः। बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन्।।७३।।

अन्वयः— ज्ञानसंयुतः गोकर्णः तदानीम् समागत्य वैराग्यम् परिदर्शयन् जनकं बोधयामास ।।७३।।

अनुवाद— उस समय ज्ञानी गोकर्ण आकर, वैराग्य का उपदेश देते हुए पिता को समझाए ।।७३।।

असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः । सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवान् ज्वलतेऽनिशम्।।७४।।
न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः। सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ।।७५।।

अन्वयः— दुःखरूपी विमोहकः संसारः खलु असारः । कस्य सुतः ? कय धनम् ? स्नेहवान् अनिशम् ज्वलते । इन्द्रस्य च किञ्चित् सुखं नास्ति चक्रवर्तिनः सुखं नास्ति । एकान्तजीविनः विरक्तस्य मुनेः सुखम् अस्ति ।।७४-७५।।

अनुवाद— दुःख स्वरूप तथा मोहित करने वाला संसार सारहीन है । पुत्र किसका ? और धन किसका? स्नेह करने वाला मनुष्य सदा जलता रहता है । इन्द्र को भी थोड़ा सा भी सुख नहीं है और न चक्रवर्ती राजा को सुख मिलता है । सुख तो उस मनन परायण पुरुष को मिलता है, जो संसार से विरक्त होकर एकान्त में जीवन बिताता है ।।७४-७५।।

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः। निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज।।७६।।

अन्वयः— प्रजारूपम् अज्ञानम् मुञ्च मोहतः नरके गतिः, अयं देहः निपतिष्यति अतः सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ।।७६।।

अनुवाद— यह मेरा पुत्र है, इस प्रकार के अज्ञान को आप त्याग दें । मोह से तो नरक में ही जाना पड़ता है । यह शरीर विनष्ट ही होने वाला है अतएव सब कुछ छोड़कर आप वन में चले जायँ ।।७६।।

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताऽब्रवीत्। किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम्।।७७।।

अन्वयः— तद् वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिता अब्रवीत् । तात वने गत्वा किं कर्तव्यम् तत् त्वम् सविस्तरम् वद ।।७०।।

अनुवाद— गोकर्ण की बातों को सुनकर वन में जाने की इच्छा से पिता ने गोकर्ण से कहा हे तात ! मुझे वन में जाकर क्या करना चाहिए ? इस बात को तुम विस्तार पूर्वक बतलाओं ।।७७।।

अन्धकूपे स्नेहपाशैर्बद्धः पङ्गुरहं शठः। कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ।।७८।।

अन्वयः— हे दयानिधे ! अन्धकूपे स्नेहपाशे बद्धः पङ्गुः अहम् शठः नूनं कर्मणा पतितः माम् उद्धर ।।७८।।

अनुवाद— हे दयासागर ! औंधे कुएँ के समान इस स्नेह के बन्धन में बँधा हुआ मैं लङ्गड़ा हूँ तथा दुष्ट हो गया हूँ । निश्चित रूप से कर्मों के कारण मैं इस संसार के बन्धन में पड़ा हूँ । आप मेरा उद्धार कीजिये ।।७८।।

गोकर्ण उवाच

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ।।७९।।

अन्वयः— त्वम् अस्थिमांसरुधिरे देहे, अभिमतिं त्यज, जायासुतादिषु सदा ममताम् विमुञ्च, इदं जगत् अनिशं क्षणभङ्गनिष्ठं पश्य, भक्तिनिष्ठः सन् वैराग्यरागरसिको भव ।।७९।।

अनुवाद— अस्थि, मांस और रक्तमय इस शरीर में आप अपनत्व की भावना को त्याग दें, पत्नी, पुत्र आदि में होने वाले ममत्व का सदा-सदा के लिए परित्याग कर दें । इस संसार को सदा क्षणभङ्गुर समझें और भक्ति की भावना से तन्मय होकर वैराग्य के रङ्ग में रङ्ग जायँ ।।७९।।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्य साधुपुरुषान् जहि कामतृष्णाम् ।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ।।८०।।

अन्वयः— सततम् धर्मंभजस्व, लोकधर्मान् त्यज, साधु पुरुषान् सेवस्व कामतृष्णाम् जहि । आशु अन्यस्य दोषगुण चिन्तनम् मुक्त्वा, अहो सेवाकथारसम् नितराम् त्वम् पिब ।।८०।।

अनुवाद— वन में आप परमात्माराधन रूपी धर्म का सेवन करें, सांसारिक जितने भी धर्म हैं, उन सबों को त्याग दें, सदा साधु पुरुषों की आप सेवा करें । भोंगों को भोगने की लालसा का परित्याग कर दें, आप दूसरों के दोषों और गुणों का विचार करना छोड़ दें तथा भगवत् सेवा तथा भागवत कथा के रस का निरन्तर पान करें ।।८०।।

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययाऽसौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ।।८१।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अन्वयः— एवम् सुतोक्तिवशतः गतषष्टिवर्षेऽपि स्थिरमतिः असौ गृहम् विहाय वनं यातः । अनुदिनम् हरेः परिचर्यया नियतम् दशमस्य पाठात् श्रीकृष्णम् आप ।।८१।।

अनुवाद— इस तरह से अपने पुत्र के कहने पर उसके अनुसार साठ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी सुदृढ बुद्धि करके घर को छोड़कर वे वन में चले गये । प्रतिदिन श्रीहरि की सेवा पूजा करने और नियमतः श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पाठ करने के कारण वे भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिए ।।८१।।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के उत्तर खण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में विप्रमोक्ष नामक चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

धुन्धुकारी को प्रेतयोनि की प्राप्ति और उससे उद्धार

सूत उवाच

पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम्। क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत्॥१॥

अन्वयः— पतरि उपरते तेन जननी भृशम् ताडिता ब्रूहि वित्तम् क्व तिष्ठति ? न चेत् लत्तया हनिष्ये ॥१॥

अनुवाद— पिता के मर जाने पर एक दिन धुन्धुकारी ने अपनी माता को खूब पीटा और पूछा कि बतलाओ धन कहाँ पर है ? नहीं तो मैं तुम्हें लुआठी से मार-मारकर मार डालूँगा ॥१॥

इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः। कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता॥२॥

अन्वयः— इति तद् वाक्यसंत्रासात् पुत्रदुःखतः जनन्या रात्रौ कूपे पातः कृतः तेन सा निधनं गता ॥२॥

अनुवाद— इस तरह के धुन्धुकारी की बातों से डर के कारण तथा पुत्र के द्वारा दिए जाने वाले दुःख के कारण उसकी माता रात्रि में कुएँ में गिर पड़ी और मर गयी ॥२॥

गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः। न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः॥३॥

अन्वयः— योगसंस्थितः गोकर्णः तीर्थयात्रार्थं निर्गतः। तस्य न दुःखम् न सुखम् न वैरी न बान्धवः ॥३॥

अनुवाद— योगी गोकर्ण तीर्थयात्रा करने के लिए घर से निकल गये। वे न तो दुःख अनुभव करते थे और न सुख का अनुभव करते थे, उनका न तो कोई वैरी था और न तो कोई बान्धव था ॥३॥

धुन्युकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः। अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः॥४॥

अन्वयः— पञ्च पण्यवधूवृतः धुन्धुकारी गृहे अतिष्ठत् तत्पोषणविमूढ धीः अति उग्रकर्म कर्ता च ॥४॥

अनुवाद— उस गृह में धुन्धुकारी पाँच वेश्याओं के साथ रहने लगा और उन सबों की ही भोग सामग्री जुटाने में लगे रहने के कारण अज्ञानी वह अत्यन्त उग्र कर्मों को करता था ॥४॥

एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः। तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन् ॥५॥

अन्वयः— एकदा ताः कुलटाः तु भूषणानि अभिलिप्सवः तदर्थं कामान्धः सः मृत्युम् अस्मरन् गोहात् निर्गतः ॥५॥

अनुवाद— एक बार उन वेश्याओं ने बहुत अधिक भूषणों को माँगा और उसको प्राप्त करने के लिए कामान्ध बना हुआ तथा अपनी मृत्यु की परवाह नहीं करता हुआ अपने घर से निकल पड़ा ॥५॥

यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः। ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च॥६॥

अन्वयः— यतः ततश्च वित्तम् संगृह्य पुनः वेश्म गतः, ताभ्यः सुवस्त्राणि कियन्ति भूषणानि च अयच्छत्॥६॥

अनुवाद— जहाँ तहाँ से धन चुराकर वह फिर अपने घर आया और उन वेश्याओं को सुन्दर वस्त्र तथा कुछ आभूषणों को भी प्रदान किया ॥६॥

बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो विचारयन्। चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥७॥

अन्वयः— बहुवित्तचयं दृष्ट्वा नार्यः रात्रौ व्यचारयन् असौ नित्यं चौर्यं करोति अतो राजा ग्रहीष्यति ॥७॥

अनुवाद— बहुत अधिक सम्पत्ति को एकत्रित हुए देखकर उन स्त्रियों ने रात्रि में विचार किया, यह प्रतिदिन चोरी करता है, अतएव किसी-न-किसी दिन राजा इसको पकड़ लेगा ॥७॥

वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् । अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥८॥

अन्वयः— पुनः वित्तं हृत्वा एनं निश्चितम् मारयिष्यति अतः अर्थगुप्तये अस्माभिः गूढं किं न हन्यते ॥८॥

अनुवाद— यह सारा धन राजा लेकर इसको निश्चित रूप से मार देगा । अतएव धन की रक्षा करने के लिए हमलोग ही इसको गूढ रूप से क्यों न मार डालें ?॥८॥

निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् । इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभिः॥९॥
पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः । त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाऽभवन्॥१०॥

अन्वयः— एनं निहत्य अर्थम् गृहित्वा यत्र कुत्रचित् यास्यामः इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तम् (तम्) रश्मिभिः सम्बद्ध्य अस्य कण्ठे पाशं निधाय तन्मृत्युमुपचक्रमुः । असौ त्वरितं (यदा) न ममार तदा चिन्तायुक्ता अभवन् ॥९-१०॥

अनुवाद— इसको मारकर और धन लेकर हमलोग जहाँ कहीं भी अपनी इच्छानुसार चली जायेंगी । इस तरह निश्चय करके वे स्त्रियाँ सोये हुए धुन्धुकारी को रस्सियों में कस दिया और उसके गले में फाँसी लगाकर उसे मारने का प्रयास करने लगीं । जब वह जल्दी नहीं मरा तो उन सबों को चिन्ता हुयी ॥९-१०॥

तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः । अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः॥११॥

अन्वयः— तन्मुखे तप्ताङ्गार समूहान् च विचिक्षिपुः । अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलः निधनं गतः ॥११॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन सबों ने उसके मुख पर जलते हुए आग के अङ्गारे को डाल दिया, अग्नि की ज्वाला से अत्यन्त दुःखी वह व्याकुल होकर मर गया ॥११॥

तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः । न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च॥१२॥

अन्वयः— तम् देहम् गर्ते मुमुचुः स्त्रियः प्रायः साहसिकाः तथैव तद् रहस्यम् केनापि न ज्ञातम् ॥१२॥

अनुवाद— धुन्धुकारी के उस शरीर को उन सबों ने गढ़े में डालकर गाड़ दिया क्योंकि स्त्रियाँ प्रायः दुःसाहसी होती हैं । उन सबों के इस रहस्य का पता किसी को नहीं चला ॥१२॥

लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ।
आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः॥१३॥

अन्वयः— लोकैः पृष्टाः वदन्ति स्म यत नः हि प्रियः वित्तलोभविकर्षितः दूरं यातः अस्मिन् वर्षे आगमिष्यति ।

अनुवाद— लोगों के पूछने पर उन सबों ने कह दिया कि हमलोगों के प्रिय पति धन के लोभ से आकर्षित होकर दूर देश में चले गये हैं । इस वर्ष भर में आ जायेंगे ॥१३॥

स्त्रीणां नैव तु विश्वासं मृतानां कारयेद्बुधः । विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखे परिभूयते॥१४॥
सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् । हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम्॥१५॥

अन्वयः— बुधः मृतानां स्त्रीणां तु विश्वासः नैव कारयेत् यः मूढः विश्वासे स्थितः सः दुःखैः परिभूयते । यासां सुधामयं वचः कामिनां रसवर्धनम् हृदयम् क्षुरधाराभम् को नाम योषितां प्रियः ॥१४-१५॥

अनुवाद— विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह दुष्ट स्वभाव वाली स्त्रियों का विश्वास न करे । जो मूर्ख उन सबों का विश्वास करता है उसको दुःख भोगना पड़ता है । उनकी अमृत के समान मधुर वाणी तो कामियों के हृदय में रस का संचार करती है किन्तु उनका हृदय तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होता है । उन स्त्रियों का कोई भी प्रिय नहीं होता है ॥१४-१५॥

संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः। धुन्धुकारी बभूवाथ महान्प्रेतः कुकर्मतः ॥१६॥

अन्वयः— ताः बहुभर्तृकाः कुलटाः वित्तं संहृत्य याताः, अथ धुन्धुकारी कुकर्मतः महान् प्रेतः बभूव ॥१६॥

अनुवाद— वे वेश्याएँ सम्पत्ति को लेकर चली गयीं और धुन्धुकारी अपने कुकर्म के काररण महान् प्रेत हुआ ॥१६॥

वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् । शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥१७॥
न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहुर्वदन् । कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥१८॥

अन्वयः— नित्यं वात्यारूपधरः दशदिशः अन्तरम् धावन् शीतातपपरिक्लिष्टः निराहारः पिपासितः हा दैव इति मुहुः वदन् क्वापि शरणं न लेभे, कियत् कालेन गोकर्णः मृतं लोकात् अबुध्यत ॥१७-१८॥

अनुवाद— नित्य ही बवण्डर का रूप धारण करके वह दशो दिशाओं में दौड़ता रहता था, शीत एवं धूप से सन्तप्त एवं भूख तथा प्यास से व्याकुल उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिलता था, वह बार-बार हा दैव ! हा दैव ! चिल्लाता था । कुछ समय बीत जाने के बाद गोकर्ण को उसके मरने का समाचार लोगों के माध्यम से मिला ॥१७-१८॥

अनाथं तं विदित्वैव गयाश्रद्धमचीकरत् । यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धमवर्तयत् ॥१९॥

अन्वयः— तम् अनाथम् एव विदित्वा गयाश्राद्धम् अचीकरत् । यस्मिन् तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धम् अवर्तयत् ॥१९॥

अनुवाद— उसको अनाथ जानकर वे उसका श्राद्ध गयाजी में जाकर किए । वे जिस तीर्थ में जाते थे उसी तीर्थ में उसका श्राद्ध करते थे ॥१९॥

एवं भ्रमन्स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् । रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः॥२०॥

अन्वयः— एवं भ्रमन् सः गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् । परैः अलक्षितः रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुम् आगतः ॥२०॥

अनुवाद— इस तरह से घूमते हुए गोकर्णजी अपने नगर में आये । उनको किसी ने देखा नहीं फिर भी वे रात्रि में अपने आङ्गन में सोने के लिए आये ॥२०॥

तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् । निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥२१॥

अन्वयः— तत्र सुप्तम् स्वबान्धवं विज्ञाय धुन्धुकारी निशीथे महारौद्रतरम् वपुः दर्शयामास ॥२१॥

अनुवाद— वहाँ अपने बन्धु को सोया हुआ जानकर धुन्धुकारी आधी रात के समय में अपना भयङ्कर रूप दिखाया ॥२१॥

सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् । सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत्॥२२॥

अन्वयः— सकृत् मेषः, सकृद् हस्ती, सकृत् च स महिषः अभवत्, सकृत् इन्द्रः सकृत् च अग्निः पुनश्च पुरुषः अभवत् ॥२२॥

अनुवाद— वह कभी भेड़ा, कभी हाथी, और कभी वह भैंसा हो जाता था, कभी वह इन्द्र हो जाता था तो कभी अग्नि हो जाता था फिर वह पुरुष हो जाता था ॥२२॥

वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः । अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत्॥२३॥

अन्वयः— इदम् वैपरीत्यम् दृष्ट्वा धैर्य संयुतः गोकर्णः अयं कोऽपि दुर्गतिकः इति निश्चित्य अथ तम् अब्रवीत्॥२३॥

अनुवाद— इन विपरीत अवस्थाओं को देखकर धैर्य सम्पन्न गोकर्ण ने निश्चित कर लिया कि यह कोई दुर्गतिक है उसके पश्चात् उन्होंने उससे कहा ।

गोकर्ण उवाच

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम्। किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः॥२४॥

अन्वयः— रात्रौ उग्रतरः त्वम् कः कुतः इमां दशाम्यातः ? नः शंस, किं प्रेतः वा, पिशाचः वा राक्षसो वा असि इति ॥२४॥

गोकर्णजी ने कहा

अनुवाद— रात में इस तरह से उग्र रूप दिखाने वाले तुम कौन हो ? कैसे तुम्हारी यह दशा हुयी ? मुझे बतलाओ कि क्या तुम प्रेत हो ? या पिशाच हो ? या राक्षस हो ?॥२४॥

सूत उवाच

एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः । अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥२५॥

अन्वयः— तदा तेन एवं पृष्टः पुनः पुनः उच्चैः रुरोद वचनोच्चारे अशक्तः संज्ञामात्रं चकार ॥२५॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— गोकर्ण के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर वह बार-बार जोर-जोर से रोया, वह बोलने में असमर्थ था केवल इशारा करता था ॥२५॥

ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयत्। तत्सेकाद्धतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे॥२६॥

अन्वयः— ततः गोकर्णः अञ्जलौ जलं कृत्वा तमुदैरयत् । तत्सेकहतपापः असौ प्रवक्तुम् उपचक्रमे ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् गोकर्ण अपनी अञ्जलि में जल लेकर उसे अभिमन्त्रित करके उस पर डाले । उस जल के पड़ने से धुन्धुकारी का पाप नष्ट हो गया और उसने कहना शुरु किया ॥२६॥

प्रेत उवाच

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः । स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया॥२७॥

अन्वयः— अहम् धुन्धुकारी इति नामतः त्वदीयः भ्राताऽस्मि । मया स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वम् नाशितम् ॥२७॥

प्रेत ने कहा

अनुवाद— मैं धुन्धुकारी नामक आपका भाई हूँ मैंने अपने ही पापों के द्वारा अपने ब्रह्मत्व को विनष्ट किया है ॥२७॥

कर्मणो नास्ति संख्या मे महाज्ञाने विवर्तिनः। लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः॥२८॥

अन्वयः— महाज्ञाने विवर्तिनः मे कर्मणः संख्या नास्ति । सः लोकानां हिंसकः अहम् स्त्रीभिः दुःखेन मारितः ॥२८॥

अनुवाद— महाअज्ञान में पड़े हुए मेरे दुष्कर्म असंख्य हैं । मैं जीवों को मारने का काम करता था, स्त्रियों ने मुझको अत्यधिक कष्ट देकर मार दिया ॥२८॥

अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् । वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात्॥२९॥

अन्वयः— अतः प्रेतत्वम् आपन्नः अहम् दुर्दशां बहामि । दैवधीनफलोदयात् अहम् वाताहारेण जीवामि ॥२९॥

अनुवाद— अतएव प्रेतत्व को प्राप्त करके मैं दुर्दशा को भोग रहा हूँ । कर्मों के फल के दैवाधीन मिलने के कारण मैं वायु पीकर जीवित रहता हूँ ॥२९॥

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय। गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाब्रवीत्॥३०॥

अन्वयः— अहो कृपासिन्धो बन्धो ! हे भ्रातः माम् आशु मोचय । अथ वचनं श्रुत्वा गोकर्णः तस्मै वाक्यम् अब्रवीत् ॥३०॥

अनुवाद— हे कृपासागर बन्धों ! हे भाई ! मुझको इस योनि से शीघ्र मुक्त कीजिये । उसके पश्चात् उसकी बातों को सुनकर उससे गोकर्णजी ने कहा ॥३०॥

गोकर्ण उवाच

त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः । तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत्॥३१॥

अन्वयः— त्वदर्थं तु मया विधानतः गयापिण्डो दत्तः, तत् कथं नैव मुक्तोऽसि इदम् मम महत् आश्चर्यम् ॥३१॥

गोकर्णजी ने कहा

अनुवाद— तुम्हारे लिए तो मैंने विधि पूर्वक गया में जाकर पिण्ड दान किया है, फिर भी तुम मुक्त नहीं हुए यही मुझको बहुत बड़ा आश्चर्य है ॥३१॥

गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह । किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम्॥३२॥

अन्वयः— गयाश्राद्धात् न मुक्तिः चेत् इह अपरः उपायः नास्ति । प्रेत ! मया किं विधेयम् तत् त्वम् सविस्तरम् वद ॥३२॥

अनुवाद— यदि गया में किए जाने वाले श्राद्ध से मुक्ति नहीं हुयी तो इस संसार में मुक्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है । प्रेत मुझे क्या करना चाहिए ? इस बात को तुम विस्तार से बतलाओ ॥३२॥

प्रेत उवाच

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति। उपायमपरं किंचित्तद्विचारय साम्प्रतम्॥३३॥

अन्वयः— गयाश्राद्धशतेनापि मे मुक्तिः न भविष्यति साम्प्रतम् अपरम् कञ्चित् उपायम् विचारय ॥३३॥

प्रेत ने कहा

अनुवाद— सैकड़ों गया श्राद्ध करने पर भी मेरी मुक्ति नहीं हो सकती हैं । अतएव इस समय कोई दूसरा उपाय आप विचार करें ॥३३॥

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः । शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥३४॥

अन्वयः— इति तद् वाक्यम् आकर्ण्य गोकर्णः विस्मयं गतः शतश्राद्धैः न मुक्तिः चेत् तव मोचनम् असाध्यम् ॥३४॥

अनुवाद— इस तरह से उसके वाक्यों को सुनकर गोकर्ण आश्चर्यित हो गये । यदि सैकड़ों श्राद्धों से भी मुक्ति नहीं हो सकती है तब तो तुम्हारी मुक्ति असंभव है ॥३४॥

इदानीं तु निजं स्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः। त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च॥३५॥

अन्वयः— हे प्रेत इदानीं तु निजस्थानम् निर्भयम् आतिष्ठ विचार्य च त्वत् मुक्तिसाधकं किञ्चित् आचरिष्ये ॥३५॥

अनुवाद— हे प्रेत ! इस समय तो तुम निर्भय होकर अपने स्थान पर जाकर निवास करो मैं विचार करके तुम्हें मुक्ति प्रदान करने वाले किसी साधन का अनुष्ठान करूँगा ॥३५॥

धुन्धुकारी निजं स्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः। गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात्॥३६॥

अन्वयः— ततः तेन आदिष्ट धुन्धुकारी निजस्थानं गतः ताम् रात्रिम् गोकर्णः चिन्तयामास किन्तु न तदध्यगात् ॥३६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् गोकर्ण का आदेश पाकर धुन्धुकारी अपने स्थान पर चला गया । उस रात को गोकर्ण ने विचार किया किन्तु वे किसी उपाय का निश्चय नहीं कर सके ॥३६॥

प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः । तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि॥३७॥

अन्वयः— प्रातः आगतम् तम् दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः । तेन तत्सर्वं कथितम् यत् निशि संजातम् ॥३७॥

अनुवाद— प्रातःकाल गोकर्ण को आये हुए देखकर लोग प्रेम पूर्वक उनके पास आये । गोकर्ण ने भी रात्रि में जो कुछ जैसे हुआ उन सारी बातों को उन लोगों को बतलाया ॥३७॥

विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः। तन्मुक्तिं नैव पश्यन्ति पश्यन्तः शास्त्रसंचयान्॥३८॥

अन्वयः— विद्वांसः योगनिष्ठाः ज्ञानिनः ब्रह्मवादिनः च शास्त्रसंचयान् पश्यन्तः तन्मुक्तिं नैव अपश्यन् ॥३८॥

अनुवाद— शास्त्र समूह का अवलोकन करने वाले विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और ब्रह्मवादी गण भी उसकी मुक्ति के साधन का निश्चय नहीं कर पाये ॥३८॥

ततः सर्वे सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम्। गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा॥३९॥

अन्वयः— ततः सर्वैः तन्मुक्तौ सूर्यवाक्यम् परम् स्थापितम् तदा गोकर्णः सूर्यवेगस्य स्तम्भनं चक्रे ॥३९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सबों ने निश्चय किया कि इसकी मुक्ति में सूर्य का वाक्य परम प्रामाणिक होगा। गोकर्ण ने अपनी तपस्या के बल से सूर्य के वेग को रोक दिया ॥३९॥

तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन्ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् । तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमित्यभ्यभाषत ॥४०॥

अन्वयः— हे जगत् साक्षिन् तुभ्यं नमः मे मुक्तिहेतुकम् ब्रूहि तत् श्रुत्वा सूर्यः दूरतः इति स्फुटम् अभ्यभाषत ।।४०॥

अनुवाद— हे जगत् को साक्षात् देखने वाले भगवन् सूर्य आपको नमस्कार है आप मुझे मुक्ति का साधन बतलायें । इस बात को सुनकर सूर्य ने दूर से ही इस तरह स्पष्ट रूप से कहा ॥४०॥

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु । इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥४१॥

अन्वयः— श्रीमद्भागवतात् मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु । इति धर्मरूपम् सूर्यवचः सर्वैः तु विश्रुतम् ॥४१॥

अनुवाद— श्रीमद्भागवत से मुक्ति होगी उसका एक सप्ताह में वाचन करो । इस तरह श्रीसूर्य भगवान् के धर्म स्वरूप वाणी को वहाँ पर विद्यमान सबलोगों ने सुना ॥४१॥

सर्वेऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् । गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥४२॥

अन्वयः— सर्वे अब्रुवन्, इदं तु सुकरम् प्रयत्नेन कर्तव्यम् निश्चयं कृत्वा गोकर्णः वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥४२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सबों ने कहा कि यह करना तो आसान है, इसको प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए। इस बात का निश्चय करके गोकर्णजी श्रीमद्भागवत का वाचन करने के लिए उद्यत हो गये ॥४२॥

तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः । पङ्ग्वन्धवृद्धमन्दाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै ॥४३॥

अन्वयः— तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामत् जनाः पङ्गु-अन्ध-वृद्ध मन्दाः च ये ते अपि पापक्षयाय ययुः ॥४३॥

अनुवाद— वहाँ कथा को सुनने के लिए देश भर के गाँवों से लोग लङ्गड़े, अन्धे, वृद्ध तथा मन्द पुरुष जो थे वे भी अपने पाप का नाश करने के लिए आये ॥४३॥

समाजस्तु महाञ्ज्ञातो देवविस्मयकारकः । यदैवासनमास्थाय गोकर्णोकथयत्कथाम् ॥४४॥

अन्वयः— यदैव आसनम् आस्थाय गोकर्णः कथाम् अकथयत् तदा तु देवविस्मय कारकः महान् समाजः जातः ॥४४॥

अनुवाद— जिस समय आचार्य के आसन पर बैठकर गोकर्ण कथा कह रहे थे उस समय देवताओं को भी आश्चर्यित कर देने वाला महान् समाज उपस्थित हुआ ॥४४॥

स प्रेतोऽपि तदा यातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः। सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥४५॥
तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ। वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥४६॥

अन्वयः— तदा सः प्रेतः अपि, इतस्ततः स्थानम् पश्यन् आयातः । तत्र सप्तग्रन्थियुतम् उच्छ्रितम् कीचकम् अपश्यत्। वातरूपी स्थितिं कतुम् अशक्तः असौ हि वंशम् आविशात् । सः तन्मूलछिद्रम् आविश्य श्रवणार्थम् स्थितः ॥४५-४६॥

अनुवाद— उस समय वह प्रेत भी, इधर-उधर स्थान देखते हुए वहाँ आया वहाँ पर सात गांठ वाले खड़े छिद्र युक्त एक बांस को उसने देखा । बवण्डर रूप से वहाँ पर बैठने में असमर्थ वह बांस के छिद्र में प्रवेश कर गया । उस बाँस के मूल में विद्यमान छिद्र में प्रवेश करके वह कथा सुनने के लिए बैठ गया ॥४५-४६॥

वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः । प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥४७॥

अन्वयः— सः वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारम् परिकल्प्य धेनुजः प्रथमस्कन्धतः स्पष्टम् आख्यानम् अकरोत् ॥४७॥

अनुवाद— गोकर्णजी ने वैष्णव ब्राह्मण को कथा का मुख्य श्रोता बनाकर उन्होंने प्रथम स्कन्ध से ही कथा कहना प्रारम्भ किया ॥४७॥

दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह । वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥४८॥

अन्वयः— दिनान्ते यदा कथा रक्षिता तदा ह चित्रम् बभूव पश्यताम् सताम् वंशैकग्रन्थिभेदः सशब्दम् अभूत् ॥४८॥

अनुवाद— दिन के अन्त में जब कथा का विश्राम हुआ उस समय एक आश्चर्य की बात हुयी; सभी लोगों के सामने ही बाँस की एक गाँठ जोर से शब्द करके फट गयी ॥४८॥

द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् । तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिभेदनम् ॥४९॥

अन्वयः— तथा द्वितीयेऽह्नि सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् तथा तृतीयेह्नि सायं तृतीयग्रन्थि भेदनम् ॥४९॥

अनुवाद— उसी तरह दूसरे दिन सायंकाल उस बाँस की दूसरी गाँठ फट गयी और तीसरे दिन सायंकाल तीसरी गाँठ फट गयी ॥४९॥

एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रन्थिविभेदनम् । कृत्वाऽपि द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥५०॥

अन्वयः— एवं चैव सप्तदिनैः सप्तगन्थिविभेदनं कृत्वा स द्वादशस्कन्धश्रवणात् प्रेततां जहौ ॥५०॥

अनुवाद— इसी तरह सात दिनों में सात गाँठों का भेदन करके धुन्धुकारी ने श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों की कथा सुनने मात्र से प्रेतत्व का परित्याग कर दिया ॥५०॥

दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः । पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥५१॥
ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत्। त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ॥५२॥

अन्वयः— तुलसीदाम मण्डितः पीतवासा, घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः जातः । सः सद्यः गोकर्णं भ्रातरं ननाम इति च अब्रवीत् । बन्धो ! कृपया त्वया अहम् प्रेतकश्मलात् मोचितः ।।५१-५२।।

अनुवाद— तुलसी की माला से अलंकृत, पीताम्बर धारण किए हुए जलभरे मेघ के समान श्याम वर्ण वाला वह मुकुट तथा कुण्डल धारण किए हुए दिव्य रूप वाला हो गया उसने शीघ्र ही अपने भाई गोकर्ण को नमस्कार किया और कहा बन्धो ! आपने कृपा करके मुझे प्रेतयोनि की व्यथाओं से मुक्त कर दिया ।।५१-५२।।

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी । सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ।।५३।।

अन्वयः— प्रेतपीडा विनाशिनी भागवती वार्ता धन्या तथा कृष्णलोकफलप्रदः सप्ताहोऽपि धन्यः ।।५३।।

अनुवाद— प्रेतपीडा को विनष्ट करने वाली यह श्रीमद्भागवत की कथा धन्य है तथा भगवान् श्रीकृष्ण के लोक रूपी फल को प्रदान करने वाला सप्ताह भी धन्य हैं ।।५३।।

कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते । अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ।।५४।।

अन्वयः— सप्ताहश्रवणे स्थिते सर्वपापानि कम्पन्ते इयं च कथा अस्माकम् सद्यः प्रलयं करिष्यति ।।५४।।

अनुवाद— सप्ताह का श्रवण करने लगने पर सभी पाप यह सोच कर काँपने लगते हैं कि यह कथा अब शीघ्र ही हमलोगों का नाश कर देगी ।।५४।।

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् । श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा।।५५।।

अन्वयः— आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् श्रवणम् पापं पावकः समिधो यथा विदहेत् ।।५५।।

अनुवाद— आर्द्र, शुष्क छोटे तथा बड़े पाप जो वाणी, मन तथा शरीर से किए जाते हैं, उन सबों को श्रवण उसी तरह से जला देता है जिस तरह से अग्नि इन्धन को जलाने का काम करती है ।।५५।।

अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि । अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम्।।५६।।

अन्वयः— अस्मिन् वै भरते वर्षे अकथा श्राविणां पुंसां जन्म सूरिभिः देव संसदि निष्फलं कीर्तितम् ।।५६।।

अनुवाद— इस भारत वर्ष में रहने वाले किन्तु श्रीमद्भागवत की कथा को नहीं सुनने वाले लोगों के जन्म को विद्वानों ने देवताओं की सभा में व्यर्थ बतलाया है ।।५६।।

किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा । अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ।।५७।।

अन्वयः— मोहतो रक्षितेन, सुपुष्टेन बलीयसा अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्र कथां विना किम् ।।५७।।

अनुवाद— मोह पूर्वक इस सुपुष्ट और बलवान् तथा अनित्य शरीर से यदि श्रीमद्भागवत की कथा का श्रवण नहीं किया गया तो शरीर से कौन सा लाभ हैं ?।।५७।।

अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम्। चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ।।५८।।
जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् । दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभङ्गुरम् ।।५९।।
कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् । अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ।।६०।।

अन्वयः— अस्थिस्तम्भं, स्नायुबद्धं, मांसशोणितलेपितम् चार्मावनद्धं दुर्गन्धम् मूत्ररीषयोः पात्रम्, जराशोक विपाकार्तम् रोगमन्दिरम्, आतुरम्, दुष्पूरम्, दुर्धरम्, दुष्टम्, सदोषम् क्षणभङ्गुरम् कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तम् शरीरम् इति वर्णितम् । अस्थिरेण अयं स्थिरं कर्म कुतो नहि साधयेत् ।।५८-६०।।

अनुवाद— इस शरीर रूपी गृह की अस्थियाँ ही स्तम्भ हैं, यह स्नायु (शिराओं) रूपी रज्जुओं से बंधा हुआ है, इसके ऊपर मांस और रक्त का लेप लगाया गया है। यह चमड़ा से ऊपर से ढँका हुआ है, यह दुर्गन्धमय है और मल-मूत्र से भरे हुए के कारण उसी का पात्र है, बुढ़ापा तथा शोक के परिणाम के कारण सदा दुखमय है। यह रोगों का दुर्बल गृह है। इसको भरना बड़ा ही कठिन है, आज भोजन और कल खाली ही रह जाता है, इसको धारण किए रहना भी कठिन है, यह सदा दोषों से दूषित ही रहता है और क्षणभङ्गुर होने के कारण अस्थायी है। इसका पर्यवसान या तो कृमियों के विट् के रूप में होता है अथवा जला दिए जाने पर यह भस्म के रूप में परिणत होता है। ऐसा ही शरीर का वर्णन किया गया है। इस अस्थिर शरीर के द्वारा श्रीमद्भागवत कथा श्रवण रूपी स्थिर कर्म क्यों न किया जाय ?॥५८-६०॥

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति। तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥६१॥

अन्वयः— यत् अन्नम् प्रातः संस्कृतम् तत् च सायं विनश्यति तदीयरससम्पुष्टे काये नित्यता नाम का ॥६१॥

अनुवाद— जो अन्न प्रातः काल पकाया जाता है वह सायं काल सड़ जाता है, उस अन्न के रस से पुष्ट बने हुए इस शरीर में नित्यता कैसे हो सकती है ?॥६१॥

सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः। अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥६२॥

अन्वयः— लोके सप्ताह श्रवणात् हरिः निकटे प्राप्यते अतः दोष निवृत्यर्थम् एतदेव हि साधनम् ॥६२॥

अनुवाद— लोक में सप्ताह श्रवण करने से शीघ्र ही श्रीहरि की प्राप्ति होती है। अतएव सभी दोषों को दूर करने का साधन यह सप्ताह श्रवण ही है ॥६२॥

बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु। जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥६३॥

अन्वयः— कथाश्रवणवर्जिताः तोयेषु बुद्बुदा इव जन्तुषु मशका इव मरणाय एव जायन्ते ॥६३॥

अनुवाद— जो लोग श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण नहीं करते हैं वे जल में उठने वाले बुलबुले के समान तथा जीवों में मच्छरों के समान केवल मर जाने के लिए ही जन्म लेते हैं ॥६३॥

जडस्य शुष्कवंशस्ययत्र ग्रन्थिविभेदनम्। चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात्॥६४॥

अन्वयः— यत्र जडस्य शुष्कवंशस्य ग्रन्थिविभेदनम्। तदा कथा श्रवात् चित्तग्रन्थिभेदः किमु चित्रम् ॥६४॥

अनुवाद— जिसके प्रभाव के कारण जड़ तथा सूखे बांस की गाँठ फट जाती है, उस सप्ताह कथा को सुनने से चित्त की ग्रन्थियों के खुल जाने में कौन सा आश्चर्य हैं ?॥६४॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥६५॥

अन्वयः— सप्ताहश्रवणे कृते हृदयग्रन्थिः भिद्यते, सर्वसंशयाः छिद्यन्ते, कर्माणि क्षीयन्ते ॥६५॥

अनुवाद— सप्ताह कथा का श्रवण करने से हृदय की गांठ खुल जाती हैं। मनुष्य के सारे संशय विनष्ट हो जाते हैं और उसके सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥६५॥

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि। कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता॥६६॥

अन्वयः— संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि कथातीर्थे चित्ते स्थिते साति बुधैः मुक्तिरेव स्मृता ॥६६॥

अनुवाद— संसार के कीचड़ के धोने में निपुण इस भागवत कथा रूपी तीर्थ में चित्त के स्थिर हो जाने पर विद्वानों का कहना है कि मुक्ति की प्राप्ति अवश्य होगी यह समझना चाहिए ॥६६॥

एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानमगमत्तदा । वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥६७॥

अन्वयः— तस्मिन् वै एवं ब्रुवति तदा वैकुण्ठवासिभिः युक्तम् प्रस्फुरत् दीप्तिमण्डलम् विमानम् अगमत् ॥६७॥

अनुवाद— जिस समय धुन्धुकारी इन सारी बातों को कह रहा था । उस समय वैकुण्ठ वासियों से युक्त तथा जिससे मण्डलाकार प्रकाश फैल रहा था इस प्रकार का एक विमान वहाँ पर आ गया ॥६७॥

सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः । विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत्॥६८॥

अन्वयः— सर्वेषाम् पश्यताम् धुन्धुलीसुतः विमानं भेजे । विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णः वाक्यम् अब्रवीत् ॥६८॥

अनुवाद— सबलोगों के सामने ही धुन्धुकारी विमान में बैठ गये । विमान् में विद्यमान् भगवद्भक्तों को देखकर गोकर्ण ने कहा ॥६८॥

गोकर्ण उवाच

अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः। आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥६९॥

अन्वयः— अत्रैव मम बहवः निर्मलाः श्रोतारः सन्ति । तेषां युगपत् विमानानि कुतः न आनीतानि ?॥६९॥

गोकर्णजी ने कहा

अनुवाद— यहाँ पर मेरे निर्मल हृदय वाले बहुत से श्रोता हैं उन सबों के लिए आप लोग एक ही साथ बहुत से विमानो को क्यों नहीं लाये ॥६९॥

श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते । फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥७०॥

अन्वयः— हे हरिप्रियाः प्रब्रुवन्तु यत् इह सर्वेषां श्रवणं समभागेन दृश्यते । किन्तु फलभेदः कुतो जातः ?॥७०॥

अनुवाद— हे श्रीहरि के प्रिय पार्षदों ! आपलोग यह बतलायें कि यहाँ सबलोगों ने समान रूप से कथा का श्रवण किया है, यह मैं देख रहा हूँ फिर भी फल में भेद कैसे हो गया ?॥७०॥

हरिदासा ऊचुः

**श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽपि संस्थितः। श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥
फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥७१॥**

अन्वयः— हे मानद ! अत्र श्रवणस्य विभेदेन फलभेदः संस्थितः । श्रवणं तु सर्वैः कृतम् किन्तु तथा मननं न कृतम्। ततः भजनादपि फलभेदः जातः ॥७१॥

भगवद् भक्तों ने कहा

अनुवाद— हे मानद ! इस फल में होने वाले भेद का कारण भी श्रवण का भेद ही है । श्रवण तो सबने किया किन्तु जिस तरह धुन्धुकारी ने उस कथा का चिन्तन किया उस तरह से इन लोगों ने कथा के अर्थ का चिन्तन नहीं किया । अतएव एक साथ कथा का श्रवण करने पर भी फल में भिन्नता आ गयी ॥७१॥

सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् । मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥७२॥

अन्वयः— प्रेतेन सप्तरात्रम् उपोष्यैव श्रवणं कृतम् तथा तेन स्थिरचित्ते मननादि भृशम् कृतम् ॥७२॥

अनुवाद— प्रेत ने सात रात्रियों तक उपवास करके ही कथा का श्रवण किया और उसने अपने स्थिर चित्त में मनन आदि भी बहुत किया ॥७२॥

अनुवाद— इस शरीर रूपी गृह की अस्थियाँ ही स्तम्भ हैं, यह स्नायु (शिराओं) रूपी रज्जुओं से बँधा हुआ है, इसके ऊपर मांस और रक्त का लेप लगाया गया है। यह चमड़ा से ऊपर से ढँका हुआ है, यह दुर्गन्धमय है और मल-मूत्र से भरे हुए के कारण उसी का पात्र है, बुढ़ापा तथा शोक के परिणाम के कारण सदा दुखमय है। यह रोगों का दुर्बल गृह है। इसको भरना बड़ा ही कठिन है, आज भोजन और कल खाली ही रह जाता है, इसको धारण किए रहना भी कठिन है, यह सदा दोषों से दूषित ही रहता है और क्षणभङ्गुर होने के कारण अस्थायी है। इसका पर्यवसान या तो कृमियों के विट् के रूप में होता है अथवा जला दिए जाने पर यह भस्म के रूप में परिणत होता है। ऐसा ही शरीर का वर्णन किया गया है। इस अस्थिर शरीर के द्वारा श्रीमद्भागवत कथा श्रवण रूपी स्थिर कर्म क्यों न किया जाय ?॥५८-६०॥

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति। तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥६१॥

अन्वयः— यत् अन्नम् प्रातः संस्कृतम् तत् च सायं विनश्यति तदीयरससम्पुष्टे काये नित्यता नाम का ॥६१॥

अनुवाद— जो अन्न प्रातः काल पकाया जाता है वह सायं काल सड़ जाता है, उस अन्न के रस से पुष्ट बने हुए इस शरीर में नित्यता कैसे हो सकती है ?॥६१॥

सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः। अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥६२॥

अन्वयः— लोके सप्ताह श्रवणात् हरिः निकटे प्राप्यते अतः दोष निवृत्यर्थम् एतदेव हि साधनम् ॥६२॥

अनुवाद— लोक में सप्ताह श्रवण करने से शीघ्र ही श्रीहरि की प्राप्ति होती है। अतएव सभी दोषों को दूर करने का साधन यह सप्ताह श्रवण हीं है ॥६२॥

बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु । जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥६३॥

अन्वयः— कथाश्रवणवर्जिताः तोयेषु बुद्बुदा इव जन्तुषु मशका इव मरणाय एव जायन्ते ॥६३॥

अनुवाद— जो लोग श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण नहीं करते हैं वे जल में उठने वाले बुलबुले के समान तथा जीवों में मच्छरों के समान केवल मर जाने के लिए ही जन्म लेते हैं ॥६३॥

जडस्य शुष्कवंशस्ययत्र ग्रन्थिविभेदनम्। चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात्॥६४॥

अन्वयः— यत्र जडस्य शुष्कवंशस्य ग्रन्थिविभेदनम् । तदा कथा श्रवात् चित्तग्रन्थिभेदः किमु चित्रम् ॥६४॥

अनुवाद— जिसके प्रभाव के कारण जड़ तथा सूखे बांस की गाँठ फट जाती है, उस सप्ताह कथा को सुनने से चित्त की ग्रन्थियों के खुल जाने में कौन सा आश्चर्य हैं ?॥६४॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥६५॥

अन्वयः— सप्ताहश्रवणे कृते हृदयग्रन्थिः भिद्यते, सर्वसंशयाः छिद्यन्ते, कर्माणि क्षीयन्ते ॥६५॥

अनुवाद— सप्ताह कथा का श्रवण करने से हृदय की गांठ खुल जाती हैं। मनुष्य के सारे संशय विनष्ट हो जाते हैं और उसके सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥६५॥

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि । कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता॥६६॥

अन्वयः— संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि कथातीर्थे चित्ते स्थिते साति बुधैः मुक्तिरेव स्मृता ॥६६॥

अनुवाद— संसार के कीचड़ के धोने में निपुण इस भागवत कथा रूपी तीर्थ में चित्त के स्थिर हो जाने पर विद्वानों का कहना है कि मुक्ति की प्राप्ति अवश्य होगी यह समझना चाहिए ॥६६॥

एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानमगमत्तदा । वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥६७॥

अन्वयः— तस्मिन् वै एवं ब्रुवति तदा वैकुण्ठवासिभिः युक्तम् प्रस्फुरत् दीप्तिमण्डलम् विमानम् अगमत् ॥६७॥

अनुवाद— जिस समय धुन्धुकारी इन सारी बातों को कह रहा था । उस समय वैकुण्ठ वासियों से युक्त तथा जिससे मण्डलाकार प्रकाश फैल रहा था इस प्रकार का एक विमान वहाँ पर आ गया ॥६७॥

सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः । विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत्॥६८॥

अन्वयः— सर्वेषाम् पश्यताम् धुन्धुलीसुतः विमानं भेजे । विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णः वाक्यम् अब्रवीत् ॥६८॥

अनुवाद— सबलोगों के सामने ही धुन्धुकारी विमान में बैठ गये । विमान् में विद्यमान् भगवद्‌भक्तों को देखकर गोकर्ण ने कहा ॥६८॥

गोकर्ण उवाच

अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः। आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥६९॥

अन्वयः— अत्रैव मम बहवः निर्मलाः श्रोतारः सन्ति । तेषां युगपत् विमानानि कुतः न आनीतानि ?॥६९॥

गोकर्णजी ने कहा

अनुवाद— यहाँ पर मेरे निर्मल हृदय वाले बहुत से श्रोता हैं उन सबों के लिए आप लोग एक ही साथ बहुत से विमानों को क्यों नहीं लाये ॥६९॥

श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते । फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥७०॥

अन्वयः— हे हरिप्रियाः प्रब्रुवन्तु यत् इह सर्वेषां श्रवणं समभागेन दृश्यते । किन्तु फलभेदः कुतो जातः ?॥७०॥

अनुवाद— हे श्रीहरि के प्रिय पार्षदों ! आपलोग यह बतलायें कि यहाँ सबलोगों ने समान रूप से कथा का श्रवण किया है, यह मैं देख रहा हूँ फिर भी फल में भेद कैसे हो गया ?॥७०॥

हरिदासा ऊचुः

श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽपि संस्थितः। श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥
फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥७१॥

अन्वयः— हे मानद ! अत्र श्रवणस्य विभेदेन फलभेदः संस्थितः । श्रवणं तु सर्वैः कृतम् किन्तु तथा मननं न कृतम्। ततः भजनादपि फलभेदः जातः ॥७१॥

भगवद् भक्तों ने कहा

अनुवाद— हे मानद ! इस फल में होने वाले भेद का कारण भी श्रवण का भेद ही है । श्रवण तो सबने किया किन्तु जिस तरह धुन्धुकारी ने उस कथा का चिन्तन किया उस तरह से इन लोगों ने कथा के अर्थ का चिन्तन नहीं किया । अतएव एक साथ कथा का श्रवण करने पर भी फल में भिन्नता आ गयी ॥७१॥

सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् । मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥७२॥

अन्वयः— प्रेतेन सप्तरात्रम् उपोष्यैव श्रवणं कृतम् तथा तेन स्थिरचित्ते मननादि भृशम् कृतम् ॥७२॥

अनुवाद— प्रेत ने सात रात्रियों तक उपवास करके ही कथा का श्रवण किया और उसने अपने स्थिर चित्त में मनन आदि भी बहुत किया ॥७२॥

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् । संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥७३॥

अन्वयः— अदृढं ज्ञानं हतम् प्रमादेन श्रुतम् हतम् भवति, संदिग्धो हि मन्त्रो हतः व्यग्रचित्तो जपः हतः ॥७३॥

अनुवाद— जो ज्ञान सुदृढ नहीं होता है, वह व्यर्थ हो जाता है और प्रमाद पूर्वक किया जाने वाला श्रवण व्यर्थ हो जाता है । सन्देह युक्त मन्त्र व्यर्थ हो जाता है और चञ्चल चित्त के द्वारा किया जाने वाला मन्त्र का जप भी व्यर्थ हो जाता है ॥७३॥

अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् । हतमश्रोत्रिये दानमनाचारहतं कुलम् ॥७४॥

अन्वयः— अवैष्णवः देशः हतः, अपात्रकम् श्राद्धम् हतम् । अश्रोत्रिये दानम् हतम् अनाचारम् कुलम् हतम् ॥७४॥

अनुवाद— वैष्णवों से रहित देश विनष्ट हो जाता है, किया गया अपात्रक श्राद्ध विनष्ट हो जाता है । अवैदिक को दिया गया दान व्यर्थ हो जाता है और आचार हीन वंश विनष्ट हो जाता है ॥७४॥

विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्वभावना । मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥७५॥
एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् । पुनःश्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥७६॥

अन्वयः— गुरुवाक्येषु विश्वासः स्वस्मिन् दीनभावना, मनोदोषजयः चैव कथायां निश्चला मतिः, एवम् आदि कृतं चेत् स्यात् तदैव श्रवणे फलम् । पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिः ध्रुवम् ॥७५-७६॥

अनुवाद— गुरु के वचनों में विश्वास, अपने में दीनता की भावना रखना मन के दोषों पर विजय तथा कथा में सुदृढ बुद्धि का होना, इस तरह से यदि कथा का श्रवण किया जाय तो निश्चित रूप से कथा के श्रवण का फल होता है । यदि ये श्रोता पुनः कथा का श्रवण करें तो सबको निश्चित रूप से वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी ॥७५-७६॥

गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् । एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ॥७७॥

अन्वयः— हे गोकर्ण ! गोविन्दः तव गोलोकं स्वयं दास्यति । एवम् उक्त्वा सर्वे हरिकीर्तनाः वैकुण्ठं ययुः ॥७७॥

अनुवाद— हे गोकर्ण, आप को तो भगवान् गोविन्द स्वयं गोलोक प्रदान करेंगे । इस तरह से कहकर श्रीहरि का कीर्तन करने वाले श्रीहरि के वे पार्षद वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥७७॥

श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः । सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥७८॥

अन्वयः— श्रावणे मासि गोकर्णः पुनः तथा सप्तरात्रवतीम् कथाम् ऊचे तैः पुनः भूयः श्रवणं कृतम् ॥७८॥

अनुवाद— श्रावण के महीने में गोकर्ण ने पुनः उसी तरह से सात रात्रियों तक कथा कहा और उन सभी श्रोताओं ने पुनः कथा का श्रवण किया ॥७८॥

कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद । विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ॥७९॥
जयशब्दा नमः शब्दास्तत्रासन्बहवस्तदा ॥८०॥

अन्वयः— हे नारद कथा समाप्तौ यज्जातं तच्च श्रूयताम् ह विमानैः भक्तैः च सह हरिः आविर्बभूव तत्र जय शब्दाः नमः शब्दाः बहवः आसन् ॥७९-८०॥

अनुवाद— हे नारद ! कथा की समाप्ति पर जो हुआ उसे आप सुनें । श्रीहरि विमानों तथा भक्तों के साथ प्रकट हो गये । उस समय वहाँ पर जय-जय शब्द का और नमः शब्द का बहुत अधिक घोष हुआ ॥७९-८०॥

पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः। गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः॥८१॥
श्रोतृनन्यान्घनश्यामान्पीतकौशेयवाससः । किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात्॥८२॥

अन्वयः— तत्र हरिः हर्षात् स्वयं पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे । गोकर्णं तु समालिङ्ग्य हरि स्वसदृशम् अकरोत् । अन्यान् श्रोतृन् घनश्यामान्, पीतकौशेयवाससः किरीटिनः कुण्डलिनः हरिः क्षणात् चक्रे ॥८१-८२॥

अनुवाद— वहाँ प्रसन्नता के कारण श्रीहरि ने स्वयं पाञ्चजन्य शङ्ख को बजाया । गोकर्ण का तो आलिङ्गन करके उन्होंने अपने समान बना दिया । दूसरे श्रोताओं को उन्होंने क्षण भर में नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, रेशमी पीताम्बर धारण किए हुए, किरीट और कुण्डल पहने हुए बना दिया ॥८१-८२॥

तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः। विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा॥८३॥

अन्वयः— तद्ग्रामे आश्वचाण्डालजातयः तदा गोकर्णकृपया विमाने तेऽपि स्थापिताः ॥८३॥

अनुवाद— उस ग्राम में कुत्ते और चाण्डाल जाति के भी जो जीव थे वे सब गोकर्णजी की कृपा से उन विमानों पर चढा लिए गये ॥८३॥

प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः। गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम्॥८४॥

अन्वयः— यत्र योगिनः गच्छन्ति तत्र हरि लोके ते प्रेषिताः । भक्तवत्सलः कथा श्रवणतः प्रीतः गोपालः गोकर्णेन सह गोपबल्लभम् गोलोकम् ॥८४॥

अनुवाद— जहाँ पर योगिजन जाते है उस श्रीहरि के लोक में वे लोग भेज दिए गये भक्तवत्सल तथा कथा के सुनने से प्रसन्न भगवान् गोविन्द गोपों के प्रिय गोलोक में गोकर्ण के साथ चले गये ॥८४॥

कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः । अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण सङ्गताः॥८५॥

अन्वयः— यथा पूर्वं अयोध्यावासिनः रामेण संगताः तथा कृष्णेन ते योगिदुर्लभम् गोलोकं गताः ॥८५॥

अनुवाद— जैसे त्रेतायुग में सभी अयोध्या वासी भगवान् श्रीराम के साथ वैकुण्ठ लोक में चले गये उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा वे सब योगिदुर्लभ गोलोक में लाये गये ॥८५॥

तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम्। यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा॥
तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥८६॥

अन्वयः— यत्र कदा सूर्यस्य, सोमस्य सिद्धानां न गतिः तं लोकम् हि ते श्रीमद्भागवतश्रवात् गताः ॥८६॥

अनुवाद— जहाँ पर कभी भी सूर्य, सोम या सिद्धों की भी गति नहीं होती है उस लोक में वे श्रीमद्भागवत की कथा सुनने के प्रभाव से चले गये ॥८६॥

ब्रूमोऽद्य ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ।
कर्णेन गोकर्णकथाक्षरो यैः पीतश्च ते गर्भगता न भूयः ॥८७॥

अन्वयः— सप्ताहयज्ञने कथा सु सञ्चितम् उज्ज्वलं फलवृन्दम् ते अत्र किं ब्रूमः गोकर्णकथाक्षरः कर्णेन यैः पीतः ते भूयः गर्भगता न ॥८७॥

अनुवाद— हे नारद ! सप्ताह विधि से कथा से जो उज्ज्वल फल संचित होता है उसके विषय में हम आपको क्या बतलायें ? जिन लोगों ने गोकर्ण की कथा का एक अक्षर भी अपने कानों से सुन लिया वे लोग पुनः अपनी माता के गर्भ में नही गये । अर्थात् मुक्त हो गये ॥८७॥

वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ।
योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति ताम् ॥८८॥

अन्वयः— वातम्बुपर्णाशनदेहशोषणैः उग्रैः तपोभिः चिरकालसंश्चितैः योगैश्च ते वै तां गति न संयान्ति याम् सप्ताह गाथाश्रवणेन यान्ति ॥८८॥

अनुवाद— वायु पीकर, जल पीकर, पत्तों को खाकर शरीर को सुखाने से, या उग्र तपस्याओं के द्वारा और दीर्घ काल तक योगाभ्यास के द्वारा लोग उस गति को नहीं प्राप्त कर पाते हैं जिस गति को लोग सप्ताहकथाश्रवण के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं ॥८८॥

इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः । पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥८९॥

अन्वयः— इमम् पुण्यम् इतिहासम् चित्रकूटस्थः शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः पठते ॥८९॥

अनुवाद— इस पवित्र इतिहास को चित्रकूट में रहने वाले मुनीश्वर शाण्डिल्य भी ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण होकर पढ़ते रहते हैं ॥८९॥

आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ।
श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥९०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अन्वयः— एतत् परम् पवित्रम् आख्यानम् सकृत श्रुतम् वै अघौघम् विदहेत् । श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिम् आवहेत् नित्यं सुपाठात् अपुनर्भवंश्च आवहेत् ॥९०॥

अनुवाद— यह परम पवित्र आख्यानक, एक बार सुनने से ही पाप समूह को विनष्ट कर देता है । श्राद्ध के समय पाठ करने से पितरों को तृप्ति प्रदान करता है और प्रतिदिन पाठ करने से मोक्ष को प्रदान करता है ॥९०॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के उत्तरखण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

छठा अध्याय

सप्ताह यज्ञ की विधि

कुमारा ऊचुः

अथ ते संप्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् । सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥१॥

अन्वयः— अथ सप्ताहश्रवणे विधिं ते सम्प्रवक्ष्यामः विधिः प्रायः सहायैः वसुभिः साध्यः स्मृतः ॥१॥

श्रीसनकादिकों ने कहा

अनुवाद— अब हमलोग आपको सप्ताह श्रवण की विधि को बतला रहे है । विधि प्रायः सहायकों तथा धनों से साध्य कही गयी है ॥१॥

दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः। विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत्॥२॥

अन्वयः— यत्नतः दैवज्ञं समाहूय मुहूर्तम् पृच्छ्य यादृशं विवाहे वित्तं तादृशं वित्तं परिकल्पयेत् ॥२॥

अनुवाद— सर्वप्रथम सप्रयास ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त पूछे उसके बाद विवाह में जितने धन की आवश्यकता होती है उतने धन की व्यवस्था करे ॥३॥

नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः। एते मासाः कथारम्भे श्रोतृणां मोक्षसूचकाः ॥३॥

अन्वयः— नभस्य, अश्विनोर्जौ, मार्गशीर्षः, शुचिः नभाः एत मासाः श्रोतृणाम् कथारम्भे मोक्षसूचकाः सन्ति ॥३॥

अनुवाद— भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ तथा श्रावण ये छह महीने कथा आरम्भ करने पर श्रोताओं को मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं ॥३॥

मासानां विग्रहे यानि तानि त्याज्यानि सर्वथा । सहायाश्चेतरे चात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥४॥

अन्वयः— हे विप्र ! मासानां यानि यानि विग्रहे तानि सर्वाणि त्याज्यानि । ये च सोद्यमाः ते च इतरे च तत्र सहायाः कर्तव्याः ॥४॥

अनुवाद— हे विप्र ! महीनों में जो भद्रा, व्यतीपात योग इत्यादि कुयोग बतलाये गये हैं, उन सबों को त्याग देना चाहिए तथा जो उत्साही लोग हों उनको तथा दूसरे लोगों को सहायक बना लेना चाहिए ॥४॥

देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः। भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः॥५॥

अन्वयः— तथा देशे देशे इयं वार्ता प्रयत्नतः प्रेष्या यत् अत्र कथा भविष्यति कुटुम्बिभिः आगन्तव्यम् ॥५॥

अनुवाद— तथा देश देशान्तर में यह समाचार प्रयत्नपूर्वक भेजना चाहिए कि यहाँ कथा होने वाली है आपलोगों को सपरिवार आना चाहिए ॥५॥

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः। स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत्॥६॥

अन्वयः— ये च केचित् स्त्री शूद्रादयः दूरे च अच्युतकीर्तना, तेषां यथा बोधो भवेत् तथा प्रयत्नं कर्तव्यम् ॥६॥

अनुवाद— जो स्त्री, शूद्र इत्यादि कथा से तथा श्रीहरि के कीर्तन से दूर हो गये हों उनको भी इस बात का पता चल जाय ऐसा प्रयास करना चाहिए ॥६॥

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः। तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥७॥

अन्वयः— देशे-देशे ये विरक्ताः वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः तेषु एवं पत्रं प्रेष्यम् तल्लेखनम् इति ईरितम् ॥७॥

अनुवाद— विभिन्न स्थानों में जो-जो विरक्त श्रीवैष्णव हों तथा श्रीहरि का कीर्तन करने के लिए उत्सुक रहते हों उनके पास इस तरह से पत्र लिखकर भेजे । उसके लिखने की विधि इस तरह बतलायी गयी है ॥७॥

सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः । अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ॥८॥

अन्वयः— सप्तरात्रं सतां सुदुर्लभः समाजो भविता । अच च अपूर्वरसरूपा कथा भविष्यति ॥८॥

अनुवाद— यहाँ सात दिनों तक अत्यन्त दुर्लभ सन्त पुरुषों का समाज होगा यह अपूर्वरसस्वरूप कथा भी होगी ॥८॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः। भवन्तश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ॥९॥

अन्वयः— हे श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः प्रेमतत्पराः भवन्तश्च अत्र शीघ्रम् आयात ॥९॥

अनुवाद— हे श्रीमद्भागावत कथा रूपी अमृत रस के पान के लोभी महापुरुषों प्रेम से परिपूर्ण होकर आपलोग शीघ्र यहाँ आ जायँ ।।९।।

नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु । सर्वथागमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ।।१०।।

अन्वयः— कदाचित् चेत् अवकाशः न तथापि तु दिनमात्रम् सर्वथा आगमनं कार्यम् अत्र क्षण एव सुदुर्लभः ।।१०।।

अनुवाद— यदि अवकाश न भी हो तो आप लोग कम-से-कम एक दिन भी अवश्य आयें, क्योंकि यहाँ का तो एक क्षण भी मिलना अत्यन्त दुर्लभ है ।।१०।।

एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च । आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत्।।११।।

अन्वयः— एवम् तेषाम् विनयेन आकारणं कर्तव्यम् । सर्वेषाम् आगन्तुकानां वासस्थानानि कल्पयेत् ।।११।।

अनुवाद— इस तरह से उन सबों को नम्रता पूर्वक बुलवाये और आये हुए सभी आगन्तुकों के लिए निवास स्थानों की व्यवस्था करे ।।११।।

तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् । विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम्।।१२।।

अन्वयः— श्रवणं तीर्थे वापि, वने वापि, गृहे वा मतम् । यत्र वसुधा विशाला (स्यात्) तत्र कथास्थलम् कर्तव्यम् ।।१२।।

अनुवाद— कथा का श्रवण किसी तीर्थ में, या वन में या गृह में भी अच्छा होता है । जहाँ पर भूमि विस्तृत हो वहीं पर कथा स्थल बनाना चाहिए ।।१२।।

शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् । गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।।१३।।

अन्वयः— भूमेः शोधनं मार्जनं लेपनं धातुमण्डनं (च कर्तव्यम्) गृहोपस्करम् उद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।।१३।।

अनुवाद— कथास्थल की भूमि का शोधन, झाड़ना, लिपना और रङ्ग-विरङ्गे धातुओं से अलङ्करण करना चाहिए । घर की वस्तुओं को उठाकर घर के एक कोने में रख देना चाहिए ।।१३।।

अर्वाक् पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् । कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः।।१४।।

अन्वयः— पञ्चाहतः अर्वाक् आस्तीर्णानि यत्नतः प्रमेलयेत् मण्डपः कदलीखण्डमण्डितः प्रोच्चैः कर्तव्यः ।।१४।।

अनुवाद— पाँच दिन पहले से ही बिछाने के सामानों को एकत्रित कर लेना चाहिए कथामण्डप को केले के स्तम्भ से अलंकृत और ऊँचा बनाना चाहिए ।।१४।।

फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः । चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ।।१५।।

अन्वयः— विष्वक् फलपुष्पदलैः वितानेन विराजितः चतुर्दिक्षु ध्वजारोपः बहुसम्पदविराजितः कर्तव्यः ।।१५।।

अनुवाद— मण्डप को चारो ओर से फल, पुष्प तथा पत्रों से एवं चन्दोवा से सुशोभित तथा तरह-तरह की झण्डियों को लगाकर उसे अच्छी तरह से सजा दे ।।१५।।

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् । तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च।।१६।।

अन्वयः— ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाः च सविस्तरम् कल्पनीयः । तेषु विप्राःविरक्ताश्च प्रबोध्य स्थापनीयाः ।।१६।।

अनुवाद— मण्डप में कुछ ऊँचाई पर सात लोकों की कल्पना करे और उनमें विरक्तों तथा ब्राह्मणों को बुला-बुलाकर बैठाये ।।१६।।

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् । वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥१७॥

अन्वयः— पूर्वं तेषाम् आसनानि यथोत्तरम् कर्तव्यानि तदा वक्तुः च अपि दिव्यम् आसनम् परिकल्पयेत् ॥१७॥

अनुवाद— आगे की ओर उन लोगों के उत्तरोत्तर आसनों की परिकल्पना करे उनके पीछे वक्ता के लिए एक दिव्य आसन की व्यवस्था करें ॥१७॥

उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा । प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥१८॥

अन्वयः— वक्ता उदङ्मुखः भवेत् तदा श्रोता वै प्राङ्मुखः (भवेत्) चेद् वक्ता प्राङ्मुखः भवेत् तदा श्रोता च उदङ्मुखः भवेत् ॥१८॥

अनुवाद— वक्ता को उत्तराभिमुख होना चाहिए और श्रोता को पूर्वाभिमुख होना चाहिए । यदि वक्ता पूर्वाभिमुख हों तो श्रोता उत्तराभिमुख रहे ॥१८॥

अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः । श्रोतृणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥१९॥

अन्वयः— अथवा श्रोतृणाम् आगमैः देशकालादिकोविदैः पूज्यपूजक मध्यतः पूर्वादिग् ज्ञेया इति प्रोक्ता ॥१९॥

अनुवाद— अथवा श्रोताओं का आगमन होने पर देश एवं काल के ज्ञाताओं ने श्रोता और वक्ता के बीच में पूर्व दिशा को जानना चाहिए ऐसा कहा है ॥१९॥

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् । दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिस्पृहः ॥२०॥

अन्वयः— वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् विरक्तः वैष्णवः धीरः दृष्टान्तकुशलः अतिनिःस्पृहः विप्रः वक्ता कार्यः ॥२०॥

अनुवाद— वेदों तथा शास्त्रों की व्याख्या करने में निपुण, संसार से विरक्त, श्रीवैष्णव, धैर्य सम्पन्न तथा दृष्टान्तों को उपन्यस्त करने में कुशल तथा अत्यन्त निस्पृह ब्राह्मण को ही कथा के वक्ता के रूप में वरण करे ॥२०॥

अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः । शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥२१॥

अन्वयः— अनेकशास्त्रविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवदिनः यदि पण्डिताः शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्याः ॥२१॥

अनुवाद— अनेक प्रकार के धर्मों के चक्कर में पड़े रहने वाले, स्त्री लम्पट, पाखण्डवाद का प्रचार करने वाले यदि पण्डित भी हों तो उनको श्रीमद्भागवत शास्त्र का प्रवचन करने के लिए नियुक्त नहीं करना चाहिए ॥२१॥

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः । पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥२२॥

अन्वयः— वक्तुः पार्श्वे सहायार्थम् तथाविधः पण्डितः संशयच्छेता लोकबोधनतत्परः अन्य स्थाप्यः ॥२२॥

अनुवाद— वक्ता के सन्निकट में उनकी सहायता करने के लिए उनके ही समान पण्डित, संदेहों को विनष्ट करने वाले तथा लोगों को समझाने में कुशल एक दूसरे भी व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए ॥२२॥

वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ।अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥२३॥

अन्वयः— वक्त्रा दिनात् अर्वाक् व्रताप्तये क्षौरं प्रकर्तव्यम् । असौ अरुणोदये शौचं निर्वर्त्य स्नानं समाचरेत् ॥२३॥

अनुवाद— वक्ता को चाहिए कि व्रत ग्रहण करने के लिए कथारम्भ होने से एक दिन पहले ही क्षौरकर्म करा ले । वह अरुणोदय काल तक शौचादि क्रिया को पूरा करके स्नान कर ले ॥२३॥

नित्यं संक्षेपतः कृत्वा सन्ध्याद्यं सप्रयत्नतः। कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत्॥२४॥

अन्वयः— प्रयत्नतः संध्याद्यं नित्यं संक्षेपतः कृत्वा कथाविघ्नविधाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥२४॥

अनुवाद— अपने संध्या वंदन आदि नित्य कर्मों को संक्षेप में पूरा करके कथा में संभावित विघ्नों का विनाश करने के लिए गणेशजी की पूजा करनी चाहिए ॥२४॥

पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत्। मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा॥२५॥

अन्वयः— शुद्ध्यर्थम् पितृन् संतर्प्य प्रायश्चित्तम् समाचरेत्। मण्डलं च प्रकर्तव्यम् तत्र हरिः स्थाप्यः ॥२५॥

अनुवाद— शुद्धि के लिए पितरों का तर्पण करके प्रायश्चित्त करे उसके पश्चात् मण्डल का निर्माण करके उसमें श्रीहरि की स्थापना करे ॥२५॥

कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात्। प्रदक्षिणा नमस्कारान्पूजान्ते स्तुतिमाचरेत्॥२६॥

अन्वयः— कृष्णम् उद्दिश्य मन्त्रेण क्रमात् पूजा विधि चरेत्। पूजान्ते प्रदक्षिणा नमस्कारान् स्तुतिम् च आचरेत् ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता के लिए मन्त्रपूर्वक क्रमशः विधिपूर्वक पूजा करे। पूजा के अन्त में श्रीभगवान् की प्रदक्षिणा नमस्कार तथा स्तुति करनी चाहिए ॥२६॥

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे। कर्ममोहपरीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात्॥२७॥

अन्वयः— हे करुणानिधे ! संसारसागरे मग्नं दीनम् कर्ममोहपरीताङ्ग माम् भवर्णवात् उद्धर ॥२७॥

अनुवाद— हे करुणासागर ! मैं संसार सागर में डूबा हुआ दीन हूँ। कर्मों के मोह ने मुझे जकड़ रखा है; अतएव आप मेरा उद्धार करें ॥२७॥

श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः। कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता॥२८॥

अन्वयः— ततः श्रीमद्भागवतस्यापि प्रयत्नतः धूपदीपसमन्विता विधिना पूजा कर्तव्या ॥२८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीमद्भागवत महापुराण की भी प्रयत्न करके विधिपूर्वक धूप, दीप इत्यादि के द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥२८॥

ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत्। स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा॥२९॥

अन्वयः— ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारम् समाचरेत्। प्रसन्नचित्तेन तदा केवलम् स्तुति कर्तव्या ॥२९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीमद्भागवत के सामने नारियल रखकर प्रसन्न मन से केवल स्तुति करे ॥२९॥

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि। स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे॥३०॥

अन्वयः— अयम् श्रीमद्भागवताख्यः प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि हे नाथ ! मया भवसागरे मुक्त्यर्थम् स्वीकृतः असि ॥३०॥

अनुवाद— श्रीमद्भागवत नामक महापुराण प्रत्यक्ष भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। हे नाथ ! मैंने भवसागर से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आपको शरण रूप से अपनाया है ॥३०॥

मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया। निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव॥३१॥

अन्वयः— हे केशव अहं तव दासः अयम् मदीयः मनोरथः त्वया सर्वथा सफलः निर्विघ्नेन एव कर्तव्यः ॥३१॥

अनुवाद— हे केशव ! मैं आपका दास हूँ। आप मेरे इस मनोरथ को पूर्णतः विघ्न रहित रूप से पूरा करें ॥३१॥

एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् । संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत्॥३२॥

अन्वयः— एवम् दीनवचः प्रोच्य अथ वक्तारम् च वस्त्र भूषाभिः सम्भूष्य पूजयेत् । पूजान्ते च तं संस्तवेत् ॥३२॥

अनुवाद— इस तरह से दीन वाणी को कहकर उसके पश्चात् वक्ता को वस्त्र एवं भूषण से अलंकृत करे और उसके पश्चात् उनकी पूजा करे । पूजा के अन्त में वक्ता की स्तुति निम्नाङ्कित प्रकार से करे ॥३२॥

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय॥३३॥

अन्वयः— हे शुकरूप ! प्रबोधज्ञ, सर्वशास्त्रविशारद एतत् कथा प्रकाशेन मदज्ञानम् विनाशय ॥३३॥

अनुवाद— हे शुकदेव स्वरूप ! समझाने की कला में निपुण आप सभी शास्त्रों में पारंगत है । आप इस कथा को प्रकाशित करके मेरे अज्ञान को विनष्ट कर दें ॥३३॥

तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा । सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि॥३४॥

अन्वयः— पश्चात् श्रेयसे मुदा तदग्रे नियमः कर्तव्यः यथा शक्त्या सप्तरात्रम् स एव हि धारणीयः ॥३४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने कल्याण के लिये, वक्ता के सामने ही नियम करना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार उस नियम का सात रात्रियों तक पालन करना चाहिए ॥३४॥

वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये । कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥३५॥

अन्वयः— कथा भङ्गनिवृत्तये पञ्च विप्राणाम् वरणं कर्तव्यम् । तैः द्वादशाक्षरविद्यया हरेः जाप्यम् कर्तव्यम् ॥३५॥

अनुवाद— कथा में सम्भावित विघ्न को दूर करने के लिए पाञ्च ब्राह्मणों का वरण करना चाहिए और वे ब्राह्मण द्वादाक्षर विद्या (ओम नमो भगवते वासुदेवाय) के द्वारा श्रीहरि का जप करे ॥३५॥

ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यान् तथा कीर्तनकारिणः । नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत्॥३६॥

अन्वयः— ब्राह्मणान् अन्यान् च वैष्णवान् तथा कीर्तन कारिणः नत्त्वा सम्पूज्य च (तैः) दत्ताज्ञः स्वयम् आसनम् आविशेत् ॥३६॥

अनुवाद— फिर ब्राह्मणों तथा दूसरे विष्णु भक्तों एवं कीर्तन करने वालों को नमस्कार करके उनकी आज्ञा प्राप्त करके श्रोता स्वयम् आसन पर बैठे ॥३६॥

लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च । कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥३७॥

अन्वयः— लोक वित्त-धनागार-पुत्रचिन्ताम् च व्युदस्य यः शुद्धमतिः कथाचित्तः स उत्तमम् फलं लभेत् ॥३७॥

अनुवाद— जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, गृह तथा पुत्र की चिन्ता को छोड़कर शुद्ध हृदय से कथा में ध्यान को लगाये रहता है, उसको उत्तम फल की प्राप्ति होती है ॥३७॥

आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तिकम् । वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता ॥३८॥

अन्वयः— सुधीमता आसूर्यादयम् आरभ्य सार्द्धत्रिप्रहरान्तकम् सम्यक् धीरकण्ठं कथा बचनीया ॥३८॥

अनुवाद— विज्ञ वक्ता को चाहिए कि वे सूर्योदय से आरम्भ करके दिन के साढे तीन प्रहर तक अच्छी तरह से तथा मध्यम स्वर से कथा का वाचन करे ॥३८॥

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् । तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥३९॥

अन्वयः— मध्याह्ने घटिकाद्वयम् कथा विरामः कर्तव्यः तत् कथामनु वैष्णवैः तदा कीर्तनं कार्यम् ॥३९॥

अनुवाद— मध्याह्न की बेला में दो घड़ी के लिए कथा का विराम करना चाहिए। उस समय कथा के पश्चात् ही श्रीवैष्णवों को कीर्तन करना चाहिए ॥३९॥

मलमूत्र जयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः। हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥४०॥

अन्वयः— मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः। कथार्थिना हि एकबारं हविष्यान्नेन लघ्वाहारः कर्तव्यः ॥४०॥

अनुवाद— कथा के बीच में मल-मूत्र के वेग पर नियन्त्रण रखने के लिए हल्का भोजन करना चाहिए। इसलिए कथा के श्रोता को एक बार ही हविष्यान्न के द्वारा हल्का भोजन करना चाहिए ॥४०॥

उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा। घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ॥४१॥

अन्वयः— चेत् शक्तिः तदा सप्तरात्रं उपोष्यैव शृणुयात् अथवा घृतपानम् पयः पानं वा कृत्वा वै सुखम् शृणुयात् ॥४१॥

अनुवाद— यदि शक्ति हो तो सात रात्रियों तक उपवास करके कथा को सुने अथवा घी पीकर या दूध पीकर सुख पूर्वक कथा को सुने ॥४१॥

फलाहारेण वा श्राव्यमेकभक्तेन वा पुनः। सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥४२॥

अन्वयः— वा फलाहारेण वा एक भुक्तेन भाव्यम्। श्रावणाय यत् सुखसाध्यं तत् कर्तव्यम् ॥४२॥

अनुवाद— अथवा फलाहार ही उतने दिन तक करे या एक समय भोजन ही करे। कथा सुनने में जो सुख साध्य हो वही करे ॥४२॥

भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम्। नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि॥४३॥

अन्वयः— अहं कथाश्रवणकारकम् भोजनं वरं मन्ये यदि कथाविघ्नकरः तदा उपवासः वरः न प्रोक्तः ॥४३॥

अनुवाद— यदि कथा के सुनने में अनुकूलता हो तो मैं भोजन करना ही श्रेष्ठ मानता हूँ। यदि उपवास करने से कथा के श्रवण में विघ्न होता है तो उसे श्रेष्ठ नहीं कहा गया है ॥४३॥

सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु नारद। विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥४४॥

अन्वयः— हे नारद ! सप्ताहव्रतिनां नियमान् शृणु विष्णुदीक्षाविहीनानां कथाश्रवे अधिकारो न ॥४४॥

अनुवाद— हे नारद ! सप्ताह सुनने वाले पुरुषों के नियमों को आप सुनें भगवान् विष्णु की दीक्षा रहित पुरुषों का कथा सुनने में अधिकार नहीं हैं ॥४४॥

ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम्। कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती॥४५॥

अन्वयः— ब्रह्मचर्यम् अधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम्। कथा समाप्तौ भुक्तिं च कथाव्रती नित्यं कुर्यात् ॥४५॥

अनुवाद— कथाव्रती को चाहिए कि वह ब्रह्मचर्य का पालन करे, जमीन पर सोये, पत्तल में भोजन करे, और कथा के समाप्त हो जाने पर ही प्रतिदिन भोजन करें ॥४५॥

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च। भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥४६॥

अन्वयः— कथाव्रती, द्विदलम्, मधु, तैलं तथैव गरिष्ठान्नम् भावदुष्टम्, पर्युषितम् नित्यं जह्यात् ॥४६॥

अनुवाद— कथाव्रती को चाहिए कि वह दाल, मधु, तेल तथा गरिष्ठ भोजन, भावदुष्ट भोजन और वासी भोजन का सदा परित्याग करे ॥४६॥

कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च। दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ।।४७।।

अन्वयः— कथाव्रती कामं, क्रोधं, मदं, मानं, मत्सरं, लोमम् एव च । दम्भं, मोहं, तथा द्वेषं च दूरयेत् ।।४७।।

अनुवाद— कथा के श्रोता को चाहिए कि वह काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह एवं द्वेष को दूर से ही त्याग दे ।।४७।।

वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा । स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ।।४८।।

अन्वयः— यः कथाव्रती सः वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनाम् तथा स्त्रीराजमहताम् निन्दां वर्जयेत् ।।४८।।

अनुवाद— जिसने कथा श्रवण करने का व्रत ले लिया है उसे चाहिए कि वह वेदों, वैष्णवों तथा ब्राह्मणों की गुरु की, गोव्रत करने वाले की, स्त्री की, राजा की तथा महापुरुषों की निन्दा न करें ।।४८।।

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रातकैस्तथा । द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ।।४९।।

अन्वयः— यः कथाव्रती सः रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैः तथा द्विजद्विड्वेदवाह्यैः च न वदेत् ।।४९।।

अनुवाद— जो कथाव्रती होता है, उसको रजस्वला, शूद्र, म्लेच्छ, पतित तथा व्रात्य, ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले तथा वेदबाह्यों से बात न करें ।।४९।।

सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा। उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ।।५०।।

अन्वयः— कथाव्रती सत्यं, शौचं, दयां, मौनं, आर्जवम् तथा विनयम् तद्वदेव उदारमानसम् एवं कुर्यात् ।।५०।।

अनुवाद— कथाव्रती को सत्यभाषण, पवित्र्य का पालन करना, दूसरों पर दया करया, मौन रहना, ॠजुता का पालन करना तथा नम्रता, उसी तरह मन की उदारता का पालन करना चाहिए ।।५०।।

दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान्। अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम्।।५१।।

अन्वयः- इमाम् कथाम् दरिद्रः क्षयी, रोगी, निर्भाग्यः पापकर्मवान् अनपत्यः मोक्षकामः च शृणुयात् ।।५१।।

अनुवाद- इस कथा को दरिद्रव्यक्ति, क्षयरोग से ग्रस्त व्यक्ति, रोग से ग्रस्त, भाग्यहीन, पापी निःसन्तान और मोक्ष चाहने वाले को अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए तथा पापों का विनाश करने के लिए सुनना चाहिए ।।५१।।

अपुष्पा काकबन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका। स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्यः प्रयत्नतः।।५२।।

अन्वयः— या नारी अपुष्पा, काकबन्ध्या, बन्ध्या मृतार्भका स्रवद्गर्भा च तया (इयं कथा) प्रयत्नतः श्राव्या ।।५२।।

अनुवाद— जिस नारी का रजोदर्शन रुक गया हो, जिसका एक ही बच्चा होकर रुक गया हो, बन्ध्या हो तथा जिसके बच्चे मर जाते हों, एवं जिसका गर्भ नहीं रुकता हो उस नारी को भी यह कथा प्रयत्न पूर्वक सुनना चाहिए ।।५२।।

एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत्। अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ।।५३।।

अन्वयः— एतेषु विधिनाश्रावे तदक्षयतरं भवेत् इयं कथा दिव्या, अत्युत्तमा, कोटियज्ञफलप्रदा च ।।५३।।

अनुवाद— इन सबों के द्वारा इस कथा को विधिपूर्वक सुने जाने पर उन सबों को अक्षय फल की प्राप्ति होती है । यह कथा दिव्य अत्यन्त उत्तम तथा करोड़ों यज्ञों के फल को प्रदान करने वाली है ।।५३।।

एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् । जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥५४॥

अन्वयः— एवं व्रतविधिं कृत्वा अथ उद्यापनम् आचरेत् फलकांक्षिभिः जन्माष्टमी व्रतमिव उद्यापनं कार्यम् ॥५४॥

अनुवाद— इस प्रकार से व्रत की विधि को करके उसके पश्चात् इसका उद्यापन करे । जो विशेष फल प्राप्त करना चाहें उन लोगों को इसका उद्यापन जन्माष्टमी व्रत के समान करना चाहिए ॥५४॥

अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायः नोद्यापनाग्रहः । श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥५५॥

अन्वयः— अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायः उद्यापनस्य आग्रहः न ते श्रवणेनैव पूताः यतः ते निष्कामा वैष्णवाः ॥५५॥

अनुवाद— जो लोग श्रीभगवान् के अकिञ्चन भक्त हैं, उन लोगों के लिए उद्यापन का कोई भी आग्रह नहीं होता है, वे तो इस कथा को सुनने मात्र से ही पवित्र हो जाते हैं क्योंकि वे भगवान् के भक्त हैं ॥५५॥

एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा । पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याऽतिभक्तितः ॥५६॥

अन्वयः— एवम् अस्मिन् नागाहयज्ञे समाप्ते सति तदा श्रोतृभिः पुस्तकस्य वक्तुश्च पूजा अतिभक्तितः कार्या ॥५६॥

अनुवाद— इस तरह से इस सप्ताह यज्ञ के समाप्त हो जाने पर श्रोताओं को चाहिए कि वे पुस्तक तथा वक्ता की पूजा अत्यन्त भक्तिपूर्वक करें ॥५६॥

प्रसादतुलसीमालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् । मृदङ्गतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥५७॥

अन्वयः— अथ श्रोतृभ्यः प्रसादतुलसीमालाः दीयताम् ततः मृदङ्गताललिलितं कीर्तनं कर्तव्यम् ॥५७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रोताओं को प्रसाद, तुलसी और माला प्रदान करना चाहिए उसके पश्चात् मृदङ्ग के ताल से मनोहर बना हुआ कीर्तन करना चाहिए ॥५७॥

जयशब्दं नमःशब्दं शङ्खशब्दं च कारयेत् । विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥५८॥

अन्वयः— जयशब्दं नमःशब्दं शङ्खशब्दं च कारयेत् विप्रेभ्यः याचकेभ्यः च वित्तम् अन्नं च दीयताम् ॥५८॥

अनुवाद— उस समय जय-जयकार की ध्वनि, नमस्कार की ध्वनि और शङ्ख की ध्वनि करनी चाहिए । तथा ब्राह्मणों तथा याचकों को धन तथा अन्न प्रदान करना चाहिए ॥५८॥

विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि । गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥५९॥

अन्वयः— चेत् श्रोता विरक्तः भवेत् तदा परे अहनि गीता वाच्या । चेत् गृहस्थः तदा कर्मशान्तये होमः कर्तव्यः ॥५९॥

अनुवाद— यदि कथा के श्रोता विरक्त हों तो दूसरे दिन गीता का पाठ करना चाहिए, यदि श्रोता गृहस्थ हों तो कर्म की शान्ति के लिए होम करना चाहिए ॥५९॥

प्रतिश्लोकं च जुहूयाद्विधिना दशमस्य च । पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥६०॥

अन्वयः— दशमस्य प्रतिश्लोकम् विधिना तिलान्नादिकसंयुतम् पायसं मधु सर्पिश्च जुहुयात् ॥६०॥

अनुवाद— दशम श्लोक के प्रत्येक श्लोक से विधिपूर्वक तिल तथा अन्न आदि से युक्त, खीर, मधु तथा घी का होम करना चाहिए ॥६०॥

अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः । तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥६१॥

अन्वयः— अथवा सुसमाहितः गायत्र्या हवनं कुर्यात् अस्य परमस्य पुराणस्य तन्मयत्वात् ॥६१॥

अनुवाद— अत्यन्त समहित होकर गायत्री से होम करे क्योंकि यह सर्वश्रेष्ठ महापुराण गायत्रीमय हैं ॥६१॥

**होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये। नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययो: ॥६२॥
दोषयो: प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम्। तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यत:॥६३॥**

अन्वय:— होमाशक्तौ बुध: तत् फलसिद्धये हैम्यं दद्यात् नानाछिद्रनिरोधार्थम् न्यूनताधिकता अनयो: दोषयो: प्रशमार्थं च विष्णुनाम सहस्रकं पठेत् । तेन सर्वं सफलं स्यात् यत: अस्मादधिकं नास्ति ॥६२-६३॥

अनुवाद— होम करने का समर्थ्य न हो तो विद्वान् को चाहिए कि वह उसके फल की प्राप्ति के लिए होम सामग्री का दान कर दे । अनेक प्रकार की त्रुटियों को दूर करने के लिए तथा विधि में न्यूनाधिक दोषों की शान्ति के लिए श्रीविष्णुसहस्र नाम स्तोत्र का पाठ करें । ऐसा करने से सम्पूर्ण कर्म सफल हो जाता है, क्योंकि इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है ॥६२-६३॥

द्वादशब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसै: । दद्यात्सुवर्णधेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥६४॥

अन्वय:— पश्चात् द्वादशब्राह्मणान् मधुपायसै: भोजयेत् व्रतपूर्णत्वहेतवे सुवर्णं धेनुं च दद्यात् ॥६४॥

अनुवाद— बाद में बारह ब्राह्मणों को खीर तथा मधु आदि उत्तम पदार्थों से भोजन कराये और व्रत की पूर्ति के लिए सुवर्ण तथा गौ का दान दे ॥६४॥

**शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च । तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम्॥६५॥
संपूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारै: सदक्षिणम् । वस्त्रभूषणगन्धाद्यै: पूजिताय यतात्मने॥६६॥**

अन्वय:— शक्तौ सति पलत्रयमितं स्वर्णसिंह विधाय तत्र अस्य ललिताक्षरं लिखितं पुस्तकं स्थाप्य, आवाहनाद्यै: तदुपचारै: सदक्षिणम् सम्पूज्य वस्त्रभूषणगन्धाद्यै: पूजिताय यतात्मने (आचार्याय दद्यात्) ॥६५-६६॥

अनुवाद— यदि शक्ति हो तो तीन पल सुवर्ण का सिंह बनवाकर उस पर श्रीमद्भागवत पुराण के सुन्दर अक्षरों में लिखे गये पुस्तक को रखकर उसकी आवाहन आदि उपचारों से अच्छी तरह से दक्षिणा के साथ पूजा करके वस्त्र एवं आभूषणों से पूजित तथा जितेन्द्रिय आचार्य को दान दे दे ॥६५-६६॥

**आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्त: स्याद्भवबन्धनै:। एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे॥६७॥
फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम्। धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशय: ॥६८॥**

अन्वय:— सुधी: आचार्याय दत्त्वा भवबन्धनै: मुक्त: स्यात् एवं सर्वपापनिवारणे विधाने कृते च शुभं फलदं श्रीमद्भागवतं पुराणम् धमार्थकाममोक्षणां साधनं स्यात् संशय: न ॥६७-६८॥

अनुवाद- आचार्य को उपर्युक्त प्रकार से दान करके श्रोता संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है । इस तरह से सभी पापों को विनष्ट करने वाले विधान का पालन करने पर शुभ फल देने वाला श्रीमद्भागवत पुराण निश्चित रूप से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन होता है ॥६७-६८॥

कुमारा ऊचु:

इति ते कथितं सर्वं किं भूय: श्रोतुमिच्छसि । श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥६९॥

अन्वय:— इति ते सर्वं कथितं भूय: किं श्रोतुमिच्छासि ? श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥६९॥

सनकादि कुमारों ने कहा

अनुवाद— इस तरह से मैंने आपको सप्ताह श्रवण की पूरी विधि को सुना दी, अब आप क्या सुनना चाहते है ? श्रीमद्भागवत पुराण के ही द्वारा भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती हैं ॥६९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम्। सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्॥७०॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा ते महात्मानः भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् सर्वपापहराम् पुण्यां भागवतीम् कथाम् प्रोचुः ॥७०॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहकर उन सनकादिकों ने भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली सभी पापों का विनाश करने वाली पवित्र श्रीमद्भागवत की कथा को एक सप्ताह तक सुनाया ॥७०॥

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम्। यथाविधि ततो देवं तुष्टुवः पुरुषोत्तमम् ॥७१॥

अन्वयः— ततः सप्ताहं नियतात्मनाम् सर्वभूतानाम् शृण्वताम् पुरुषोत्तमं देवं यथाविधि तुष्टुवुः ॥७२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् एक सप्ताह पर्यन्त कथा सुनने वालों के सामने ही उन लोगों ने भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति की ॥७१॥

तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा। तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम्॥७२॥

अन्वयः— तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां परा पुष्टता सर्वभूतमनोरहम् परमं तारुण्यं च अभूत् ॥७२॥

अनुवाद— कथा के अन्त में ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति अत्यन्त पुष्ट हो गये तथा उनको सभी जीवों के मन को आकृष्ट करने वाली जवानी की प्राप्ति हो गयी ॥७२॥

नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे। पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसंभृतः ॥७३॥

अन्वयः— नारदश्च स्वीये मनोरथे सिद्धे पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसम्भृतः कृतार्थः अभूत् ॥७३॥

अनुवाद— अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने पर नारदजी के सम्पूर्ण अङ्गों में रोमाञ्च हो गया और वे परमानन्द से परिपूर्ण हो गये ॥७३॥

एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः। प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः॥७४॥

अन्वयः— एवं कथां समाकर्ण्य भगवत् प्रियः नारदः कृताञ्जलिः प्रेमगद्गदया वाचा तान् उवाच ॥७४॥

अनुवाद— इस तरह से कथा को सुनकर श्रीभगवान् को प्रिय नारदजी हाथ जोड़कर प्रेम पूर्वक गद्गद वाणी से उन सनकादिकों से कहे ॥७४॥

नारद उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः। अद्य मे भगवान् लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥७५॥

अन्वयः— करुणापरैः भवद्भिः अहम् अनुगृहीतः धन्यः अस्मि अद्य में सर्वपापहरः हरिः लब्धः ॥७५॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— करुणा करने वाले आपलोगों ने मुझे अनुगृहीत किया है अतएव मैं धन्य हो गया हूँ। आज मैंने सभी पापों के विनाशक श्रीहरि को प्राप्त कर लिया है ॥७५॥

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः। वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते॥७६॥

अन्वयः— हे तपोधनाः अहं श्रवणं सर्वधर्मेभ्यः वरं मन्ये यतः वैकुण्ठस्थः कृष्णः यस्य श्रवणात् लभ्यते ।।७६।।

अनुवाद— हे तपोधनों ! मैं सप्ताह श्रवण को सबसे बड़ा धर्म मानता हूँ; क्योंकि उसका श्रवण करने से वैकुण्ठ में भी रहने वाले गोलोक बिहारी श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जाती है ।।७६।।

सूत उवाच

एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे। परिभ्रमन् समायातः शुको योगीश्वरस्तदा॥७७॥

अन्वयः— वैष्णवोत्तमे नारदे एवं ब्रुवति तत्र तदा परिभ्रमन् योगेश्वरः शुकः समायातः ।।७७।।

अनुवाद— वहाँ पर इस तरह से वैष्णवों में श्रेष्ठ नारदजी के कहते समय ही वहीं घूमते हुए योगेश्वर श्रीशुकदेवजी आ गये ।।७७।।

तत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ।
कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥७८॥

अन्वयः— तदा कथावसने तत्र षोडशवार्षिकः ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः व्यासात्मजः निजलाभपूर्णः प्रेम्णा भागवतं शनैःशनैः पठन् आययौ ।।७८।।

अनुवाद— उस समय वहाँ पर सोलह वर्ष की अवस्था वाले ज्ञानरूपी महासागर को सम्वर्धित करने के लिए चन्द्रमा के समान शुकदेवजी जो आत्मलाभ के कारण परिपूर्ण थे तथा जो प्रेम पूर्वक श्रीमद्भागवत का पाठ कर रहे थे वे कथा की समाप्ति के अवसर पर आ गये ।।७८।।

दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ।
प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संश्रृणुतामलां गिरम् ॥७९॥

अन्वयः— परमोरुतेजसम् तं दृष्ट्वा सदस्याः सद्यः समुत्थाय महासनम् ददुः सुरर्षिः तम् प्रीत्या सुखं अपूजयत्। स्थितः अवदत् अमलां गिरम् संश्रृणत ।।७९।।

अनुवाद— परम तेजस्वी शुकदेवजी को देखकर सभी सदस्य उठकर खड़े हो गये और उनको उनलोगों ने श्रेष्ठ आसन प्रदान किया। नारदजी ने प्रेम पूर्वक उनकी अच्छी तरह से पूजा की। बैठकर शुकदेवजी ने कहा आपलोग मेरी निर्मल वाणी को सुनें ।।७९।।

श्रीशुक उवाच

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥८०॥

अन्वयः— हे भुवि भावुका; निगमकल्पतरोः गलितं फलम् शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् भागवतं रसम् आलयं मुहुः पिबत ।।८०।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे पृथ्वी पर रहने वाले रसज्ञ महापुरुषों वेदरूपी कल्पवृक्ष के पक कर गिरे हुए जो शुकदेवजी रूपी तोते के मुख का सम्पर्क हो जाने के कारण अमृत के समान अत्यन्त स्वादिष्ट रस से परिपूर्ण है उस श्रीमद्भागवत रूपी फल का मुक्तिकाल पर्यन्त आप लोग बार-बार पान करें ।।८०।।

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥८१॥

अन्वयः— महामुनि कृते श्रीमद्भागवते अत्र निर्मत्सराणां सतां प्रोज्झितकैतवः परमः धर्मः, अत्र तापत्रयोन्मूलनम् शिवदं वास्तवं वस्तु वेद्यम्, अत्र शुश्रुषुभिः कृतिभिः ईश्वरः सद्यः हृदि अवरुध्यते, परैः वा किम् ॥८१॥

अनुवाद— महामुनि व्यासजी द्वारा प्रणीत इस श्रीमद्भागवत महापुराण में मत्सर रहित सन्तों की मोक्ष की भी प्राप्ति की कामना रूपी कपट से रहित सर्वश्रेष्ठ धर्म का वर्णन किया गया है । इसमें संसार के तीनों संतापों को विनष्ट करने वाले, कल्याणकारी वास्तव वस्तु को ही वेद्य बतलाया गया है । इस श्रीमद्भागवत पुराण के श्रवण की इच्छा वाले पुण्यवान पुरुषों के द्वारा अपने हृदय में ईश्वर की शीघ्र ही सुदृढ प्रतिष्ठा कर ली जाती है । अतएव मुक्ति की प्राप्ति के लिए किसी दूसरे साधन को अपनाने से क्या लाभ हैं ?॥८१॥

श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं यस्मिन्पारमहंस्यमेवममलं ज्ञानं परं गीयते ।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्प्रपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥८२॥

अन्वयः— श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यत् वैष्णवानां धनम्, यस्मिन् पारमहंस्यम् एव परं ज्ञानं गीयते । यत्र ज्ञानविराग भक्ति सहितम् नैष्कर्म्यम् आविष्कृतम्, तच्छृण्वन्, प्रपठन् विचारणपरः नरः भक्त्या विमुच्येत् ॥८२॥

अनुवाद— श्रीमद्भागवत महापुराण पुराणों में श्रेष्ठ हैं, यह श्रीवैष्णवों का धन है, इसमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के साथ परम हंसों के प्राप्य भूत ज्ञान को प्रकाशित किया गया है । इस श्रीमद्भागवत का भक्ति पूर्वक श्रवण, पठन और मनन करने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥८२॥

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः । अतः पिबन्तु सद्भाग्याः मा मा मुञ्चत कर्हिचित्॥८३॥

अन्वयः— अयं रसः स्वर्गे, सत्ये, कैलासे, वैकुण्ठे च नास्ति । अतः हे सद्भाग्याः पिबन्तु कर्हिचित् मा मा मुञ्चन्तु ॥८३॥

अनुवाद— यह रस स्वर्गलोक में, सत्यलोक में, कैलास में अथवा वैकुण्ठ में भी नहीं है, अतएव हे सद्भाग्य सम्पन्न श्रोताओं आपलोग इसका सर्वदा पान करते रहें इसका कभी भी परित्याग न करें ॥८३॥

सूत उवाच

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ।
प्रह्लादबल्युद्धावफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥८४॥

अन्वयः— एवं ब्रुवाणे बादरायणौ सति सभायां मध्ये प्रह्लाबल्युद्धवफाल्गुनादिभिः वृतः हरिः आविः आसीत्, सुरर्षिः तम् तान् च अपूजयत् ॥८४॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— जब इस तरह से शुकदेवजी कह ही रहे थे उसी समय सभा के बीच में प्रह्लाद, बलि, उद्धव तथा अर्जुन आदि पार्षदों के साथ श्रीहरि प्रकट हो गये और नारदजी ने श्रीहरि तथा उनके उन पार्षदों की पूजा की ॥८४॥

दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ।
भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमन् कीर्तनदर्शनाय ॥८५॥

अन्वयः— प्रसन्नं हरिं दृष्ट्वा (देवर्षिः) महदासने (उपवेशयामास) तदा ते अग्रतः कीर्तनं चक्रिरे । भवान्या (सह) भवः कमलासनः तु कीर्तनदर्शनाय तत्र अगमत् ॥८५॥

अनुवाद- श्रीहरि को प्रसन्न देखकर नारदजी ने उनको एक महान् आसन पर बैठाया और वे सब उनके सामने कीर्तन करने लगे। वहाँ पर उस कीर्तन को देखने के लिए पार्वतीजी के साथ शिवजी और ब्रह्माजी भी आ गये ॥८५॥

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तनं ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥८६॥

अन्वयः— तरलगतितया प्रह्लादः तालधारी, उद्धवः कांस्यधारी सुरर्षिः वीणाधारी स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनः अभूत्। इन्द्रः मृदङ्गम् अवादीत्, ते कुमाराः कीर्तने जय-जय सुकराः यत्राग्रे सरसरचनया भाववक्ता व्यास पुत्रो बभूव ॥८६॥

अनुवाद— चञ्चल गति वाले होने के कारण प्रह्लादजी करताल बजाने लगे, उद्धवजी झाँझ बजाने लगे, देवर्षि नारदजी बीणा बजाने लगे, तथा गान विद्या में कुशल होने के कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्र मृदङ्ग बजाने लगे और कीर्तन के बीच में सनकादि महर्षि जय-जयकार करने लगे तथा सुन्दर अङ्ग भङ्गिमा के द्वारा शुकदेवजी भावों का प्रदर्शन करने लगे ॥८६॥

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम्।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥८७॥

अन्वयः— तत्र मध्ये सुतेजसां भक्त्यादिकानाम् त्रिकम् ननर्त, एतत् अलौकिकम् कीर्तनम् ईक्ष्य प्रसन्नः हरिः अपि वचः अब्रवीत् ॥८७॥

अनुवाद— वहाँ पर बीच में अत्यन्त तेजः सम्पन्न भक्ति ज्ञान और वैराग्य इन तीनों का समुदाय नाचने लगा इस अलौकिक कीर्तन को देखकर प्रसन्न होकर श्रीहरि भी कहे ॥८७॥

मत्तो वरं भागवता वृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि सांप्रतम्।
श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥८८॥

अन्वयः— साम्प्रतम् कथा कीर्तनतः प्रीतः अस्मि, हे भागवताः मत्तः वरम् वृणुध्वम्, इति तद्वाक्यं श्रुत्वा अतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ताः ते हरिमूचिरे ॥८८॥

अनुवाद— मैं तुमलोगों की इस कथा और कीर्तन से अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। भावभरे हुए मुझसे तुम लोग वरदान माँगो। श्रीहरि के इस वाक्य को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न तथा प्रेमपूर्ण हृदय वाले वे सब श्रीहरि से कहे ॥८८॥

नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात्।
मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वाऽन्तरधीयताच्युतः ॥८९॥

अन्वयः— नगाहगाथासु त्वया एभिः भक्तैः प्रयत्नतः भाव्यम् इति, अयं मनोरथः परिपूरणीयः तथा इति च उक्त्वा अच्युतः अन्तरधीयत ॥८९॥

अनुवाद— भविष्य में जहाँ कहीं भी सप्ताह कथा हो, वहाँ आप अपने इन भक्तों के साथ अवश्य पधारें; हमलोगों के इसी मनोरथ को आप पूर्ण कर दीजिये। इसके पश्चात् श्रीहरि ठीक है, इस तरह से कहकर अन्तर्धान हो गये ॥८९॥

ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ।
अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥९०॥

अन्वयः— ततः नारदः तच्चरणेषु शुकदीनपि तापसान् च अनमत् अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः पीतकथामृताः ते सर्वे ययुः ॥९०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् नारदजी ने श्रीभगवान् और उनके पार्षदों के चरणों में नमस्कार किया, तथा शुकदेवजी आदि तपस्वियों को नमस्कार किया उसके पश्चात् कथा रूपी अमृत का पान करने के कारण अत्यन्त प्रसन्न तथा विनष्ट अज्ञान वाले वे सब अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥९०॥

भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ।
अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥९१॥

अन्वयः— तदा शुकेन सुताभ्यां सहभक्तिः स्वकीये शास्त्रे रक्षिता । अतः भागवतस्य सेवनात् हरिः वैष्णवानाम् हि चित्तं समायाति ॥९१॥

अनुवाद— उस समय शुकदेवजी ने ज्ञान तथा वैराग्य नामक दो पुत्रों के साथ भक्ति को अपने शास्त्र में स्थापित कर दिया । अतएव श्रीमद्भागवत का सेवन करने से श्रीहरि श्रीवैष्णवों के चित्त में प्रवेश कर जाते हैं ॥९१॥

दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ।
संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥९२॥

अन्वयः— दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानाम् मायापिशाचीपरिमर्दितानाम्, संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥९२॥

अनुवाद— जो लोग दरिद्रता जन्य दुःख की ज्वाला से दग्ध हो चुके हैं माया नामक पिशाची ने जिन लोगों को रौंद डाला है, जो लोग संसार रूपी सागर में डूबे हुए हैं ऐसे लोगों का कल्याण करने के लिए श्रीमद्भागवत पुराण सिंहनाद करता है ॥९२॥

शौनक उवाच

शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः । सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धि मे संशयं त्विमम्॥९३॥

अन्वयः— शुकेन राज्ञे कदा उक्तं, पुनः गोकर्णेन कदा, ब्राह्मैः सुरर्षये कदा मे इमम् संशयं छिन्धि ॥९३॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को गोकर्ण ने धुन्धुकारी को तथा सनकादिकों ने देवर्षि नारद को इस महापुराण की कथा को किस-किस समय सुनाया, आप मेरे इस संदेह को दूर करें ॥९३॥

सूत उवाच

आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ । नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत्॥९४॥

अन्वयः— आकृष्ण निर्गमात् त्रिंशद्वर्षाधिकगतें कलौ शुकः नभस्ये नवमीतः कथारम्भम् अकरोत् ॥९४॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन के पश्चात् तीस वर्ष बाद भाद्रपद मास की नवमी तिथि से शुकदेवजी ने कथा का शुभारम्भ किया ॥९४॥

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये । शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम्॥९५॥

अन्वयः— परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये शुद्धे शुचौ नवम्याम् धेनुजः कथाम् अकथयत् ॥९५॥

अनुवाद— परीक्षित् के कथा सुनने के पश्चात् कलि के दो सौ वर्ष बीत जाने पर गोकर्णजी ने आषाढ शुक्ल नवमी को कथा कहना प्रारम्भ किया ॥९५॥

तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति । ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥९६॥

अन्वयः— तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ऊर्जे सिते पक्षे नवम्याम् ब्रह्मणः सुताः ऊचुः ॥९६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् कलियुग के तीस वर्ष और बीत जाने पर कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में नवमी तिथि को सनकादिकों ने श्रीमद्भागवत कथा को कहा ॥९६॥

इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ । कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥९७॥

अन्वयः— हे अनघ यत् त्वया पृष्टं तत् ते समाख्यातम् इति कलौ भागवती वार्ता भवरोग विनाशिनी ॥९७॥

अनुवाद— हे अनघ ! आपने जो पूछा उसका उत्तर मैंने दे दिया, कलियुग में श्रीमद्भागवत की कथा भवरोग को विनष्ट कर देने वाली हैं ॥९७॥

कृष्णप्रियं सकलकश्मलनाशनं च मुक्त्यैकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ।
सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हितीर्थपरिशीलनसेवया किम् ॥९८॥

अन्वयः— हे सन्तः कृष्णप्रियम् सकलकल्मषनाशनं, मुक्त्येकहेतुम्, भक्तिविलासकारि इदम् कथानकम् आदरेण पिबत । लोके हि तीर्थपरिशीलन सेवया किम् ॥९८॥

अनुवाद— हे सन्तों भगवान् श्रीकृष्ण को प्रिय समस्त पापों का विनाश करने वाले, मुक्ति प्राप्ति का सर्वप्रधान साधन तथा इस लोक में भक्ति को सम्वर्द्धित करने वाले इस कथानक का आपलोग आदर पूर्वक सेवन करें । संसार में तीर्थ आदि का परिशीलन तथा उनके सेवन से कौन सा लाभ हैं ?॥९८॥

स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥९९॥

अन्वयः— यमः स्वपुरुषमपि पाशहस्तं वीक्ष्य तस्य कर्णमूले वदति । भगवत् कथासु मत्तान् परिहर । अहम् किल अन्यनराणाम् प्रभुः वैष्णवानाम् न ॥९९॥

अनुवाद— यमराज ने अपने दूत को हाथ में पाश लिए हुए देखकर उसके कानों के समीप मुँह करके कहा, श्रीभगवान् की कथा में मस्त रहने वाले भगवद् भक्तों से दूर रहना । मैं दूसरे ही लोगों का नियामक हूँ श्रीवैष्णवों का नहीं ॥९९॥

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥१००॥

अन्वयः— असारे संसारे हे विषयविषसङ्गाकुलधियः । क्षेमार्थम् क्षणार्धम् शुकगाथातुलसुधाम् पिबत । भो कुत्सितकथे कुपथे किमर्थम् व्यर्थम् व्रजत यत् श्रवणगतमुक्त्युक्ति कथने परीक्षित् साक्षी ॥१००॥

अनुवाद— हे इस असार संसार में विषय रूपी विष में आसक्ति के कारण व्याकुल बुद्धि वाले लोगों, अपने

कल्याण की प्राप्ति के उद्देश्य से आधे क्षण तक ही इस श्रीमद्भागवत कथा रूपी अतुलनीय अमृत का आपलोग पान कर लें, निन्दित कथाओं से युक्त कुमार्ग में आप सभी व्यर्थ में ही क्यों भटक रहे हैं ? इस कथा के कानों में पड़ने मात्र से ही मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, इस विषय में तो परीक्षित् हीं साक्षी हैं ।।१००।।

रसःप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा। कण्ठे संबध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत्।।१०१।।

अन्वयः— रसप्रवाह संस्थेन श्रीशुकेन (इयम्) कथा ईरिता येन कण्ठे सम्बध्यते स वैकुण्ठप्रभुः भवेत् ।।१०१।।

अनुवाद— श्रीशुकदेवजी ने प्रेमरस के प्रवाह में स्थित होकर इस कथा को कहा है । जो इस कथा को अपने गले में धारण कर लेता है वह वैकुण्ठ का स्वामी हो जाता है ।।१०१।।

इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ।
जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित्पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ।।१०२।।

अन्वयः— सपदि शास्त्रपुञ्जं विलोक्य मया सर्वसिद्धान्तसिद्धम् परमगुह्यम् इति ते निगदितम् जगति शुककथातः निर्मलम् किञ्चित् नास्ति, परसुखहेतोः द्वादशस्कन्धसारम् पिब ।।१०२।।

अनुवाद— अभी-अभी शास्त्र समूह का अवलोकन करके अत्यन्त गोपनीय सभी सिद्धान्तों के सारभूत अर्थ को आपको मैंने बतलाया है । संसार में शुकशास्त्र से अधिक पवित्र दूसरा कुछ भी नहीं है । अतएव आप परम सुख की प्राप्ति के लिए इस द्वादश स्कन्ध वाले श्रीमद्भागवत कथा के सारभूत रस का पान करें ।।१०२।।

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ।
तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम् ।।१०३।।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अन्वयः— यः एताम् नियततया भक्त्या शृणोति यश्च एनाम् शुद्ध वैष्णवाग्रे कथयति तौ सम्यक् विधिकरणात् यथार्थ्यात् फलं लभेते भुवने किमपि हि असाध्यम् न ।।१०३।।

अनुवाद— जो पुरुष नियम पूर्वक इस कथा को भक्तिपूर्वक सुनता है और जो इस कथा को शुद्ध श्रीवैष्णव के समक्ष इस कथा को सुनाता है, वे दोनों अच्छी तरह से विधि का पालन करने के कारण इस कथा के यथार्थ फल को प्राप्त करते हैं । उन दोनों को त्रैलोक्य में कुछ भी असाध्य नहीं होता ।।१०३।।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के उत्तर खण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्य के प्रसङ्ग में श्रवणविधिवर्णन नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ।।

।। ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।।

।। श्रीगोपालकृष्णाय नमः ।।

ॐ नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ।

प्रथम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

श्रीसूतजी से शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

अन्वयः— अस्य यतो जन्मादि अन्वयात् इतरतश्च यः अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट् यः हृदा आदिकवये ब्रह्म तेने, यत् सूरयः मुह्यन्ति तेजोवरिमृदां विनिमये यथा त्रिसर्गः अमृषा स्वेन धाम्ना सदानिरस्तकुहकं परं सत्यं धीमहि ॥१॥

अनुवाद— जिनसे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय हाते हैं, जो सभी सद्रूप पदार्थों में अनुगत और असत् पदार्थों से पृथक् हैं वे जड़ नही चेतन हैं वे परतंत्र नहीं स्वयंप्रकाश हैं । वे ही ब्रह्मा को भी अपने सङ्कल्प मात्र से वेदों का ज्ञान प्रदान किये । जिन परंब्रह्म के विषय में विज्ञ पुरुष भी मोहित हो जाते हैं । जैसे तेजोमय सूर्य रश्मियों में जल का भ्रम हो जाता है, जल में स्थल का भ्रम होता है, उसी तरह उन परंब्रह्म में त्रिगुणात्मिका जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी सत्य के तरह प्रतीत होती है स्वयंप्रकाश वे ब्रह्म माया और माया के कार्यों से पूर्णरूप से मुक्त हैं ॥१॥

भावार्थदीपिका

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि । यस्याऽऽस्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ॥१॥
विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् । श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तत् ॥२॥
माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ । वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ॥३॥
संप्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारतः । श्रीभागवतभावार्थदीपिकेयं प्रतन्यते ॥४॥
क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः । किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ॥५॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥६॥

श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालबालोदयः ।
द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभे वर्वर्ति सर्वोपरि ॥७॥

अथ नानापुराणशास्त्रप्रबन्धैश्चित्तप्रसत्तिमलभमानस्तत्र तत्रापरितुष्यन्नारदोपदेशतः श्रीमद्भगवद्गुणानुवर्णनप्रधानं भागवतशास्त्रं प्रारिप्सुर्वेदव्यासस्तत्प्रत्यूहनिवृत्त्यादिसिद्धये तत्प्रतिपाद्यपरदेवतानुस्मरलक्षणं मङ्गलमाचरति-जन्माद्यस्येति । परं परमेश्वरं धीमहि। ध्यायतेर्लिङि छन्दसम् । ध्यायेमेत्यर्थः । बहुवचनं शिष्याभिप्रायम् । तमेव स्वरूपतटस्थलक्षणाभ्यामुपलक्षयति ।